पञ्जाब-केशरी

महाराजा रणजीतसिंह।

पञ्जाब-केशरी

महाराजा रणजीतसिंहका

संक्षिप्त

जीवन-चरित्र ।

लेखक और प्रकाशक—

रामलाल वर्म्मा, प्रोप्राइटर

बर्म्मन प्रेस' और आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०'

३७१, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता ।

द्वितीय संस्करण ।

सं० १९७६ विक्रमीय ।

मूल्य आठ आना ।

मुद्रक
रामलाल वर्म्मा,
वर्म्मन प्रेस, कलकत्ता।

मिलनेका पता—
आर. एल. वर्म्मन एण्ड को०
३७१ अपर चीतपुर रोड,
कलकत्ता।

भूमिका
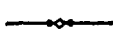
यह पुस्तक मैंने अपनी बाल्यावस्थामें लिखी थी और १९०८ ई० में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, जो दो वर्षमें ही बिक गया था। इसके बाद बहुत दिनोंतक इसकी माँगें आती रहीं और ग्राहकगण निराश होते रहे, पर कितने ही अनिवार्य्य कारणोंसे इसके पुनः प्रकाशित होनेकी नौबत ही न आयी।

अब, जब मैंने इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करनेका विचार कर पुस्तक उठायी, तो मुझे इसमें अनेक त्रुटियां दिखायी दीं। अगत्या मैंने इसे यथासाध्य संशोधित और परिवर्धित कर पुनः प्रकाशित किया है। आशा है, सहृदय पाठक और उदार समालोचकगण इसे पढ़कर सन्तुष्ट होंगे और इसमें रह गयी त्रुटियोंके लिये मुझे क्षमा करेंगे।

इस संक्षिप्त जीवनीके लिखनेमें मुझे अङ्गरेजी, उर्दू तथा गुरमुखी आदि भाषाओंकी कितनी ही पुस्तकोंसे सहायता लेनी पड़ी है, अतः मैं उनके मूल लेखकोंका चिर कृतज्ञ हूं।

कलकत्ता—
१-५-१९१९ ई०

निवेदक—
रामलाल वर्म्मा।

विषय सूची ।

* श्रीः *

पञ्जाब-केशरी

महाराजा रणजीतसिंहका

संक्षिप्त

जीवन चरित्र।

महाराजा बहादुरकी जीवनी, उनका विजय-साम्राज्य और राज-सभाके सदस्योंका वर्णन करनेके पूर्व, हम सिक्खोंके प्रारम्भिक वृत्तान्तका थोड़ासा वर्णन कर देना परमावश्यक समझते हैं, कारण, कि—इससे उनके चरित्रके समझनेमें पाठकों-को विशेष सुगमता प्राप्त हो सकती है।

सिक्ख–जातिकी उत्पत्ति।

सिक्ख-धर्म्मके नेता 'गुरु नानक साहब'ने सन् १४६६ ईस्वी (सम्राट् बाबरके राजत्वकाल) में, तिलौंडी-ग्राममें, जो रावी नदीके तटपर, लाहौरसे कुछ मील हटकर बसा है, जन्म ग्रहण किया था। उनके पिता तिलौंडी-ग्रामके पटवारी थे* और

---

* अबके पटवारी यद्यपि माननीय हैं तथापि उनका पद पैत्रिक न होनेका कारण वैसा प्रतिष्ठित नहीं है। गुरु नानकके पिता पुरानी चालके पटवारी थे, जिनके हाथमें जमींदारोंकी चोटी भली प्रकार रहती थी।

उनके सहनिवासी जन, उनको प्रतिष्ठा तथा सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे । गुरु नानक शाहकी, वाल्यावस्थासे ही सांसारिक विषयोंमें अरुचि थी, पर पिताके अनुरोधसे उन्होंने विवाह कर लिया था और सन्तान भी उत्पन्न हुई थी, किन्तु सांसारिक वैभवों पर वाल्यावस्थासे ही विरक्ति होनेके कारण शीघ्र ही कुटुम्बकी मोह-ममताको तोड़ वे यात्राके लिये निकल पड़े । उनका मर्दाना नामक एक सेवक छायाकी भांति सदा उनके साथ पर्यटन करता था । कहा जाता है, कि आप मुसल्मानोंके प्रधान तीर्थस्थान 'मक्का शरीफ'मे भी गये थे; कारण, कि आपका विचार हिन्दू और मुसल्मानोंको एक करनेका था। आपने वैराग्य ग्रहण करनेके समयसे ही अपने पैत्रिक धर्म्म पर आक्षेप करना प्रारम्भ करदिया था। गुरु नानक साहब पक्के अद्वैतवादी ('एको-ब्रह्मः द्वितीयो नास्ति'के पक्षपाती) थे । सम्राट् वावर आपकी वाणियोंको सुनकर वहुत प्रसन्न हुए थे और उनके प्रति सम्राटोंकी नाईं वड़ी प्रतिष्ठासे व्यवहार करते थे ।

गुरु नानक शाह सन् १५३८ ई०में, कुल ३६ वर्षकी अवस्थामें, कर्तारपुर ग्राममें, अपनी स्त्री और वच्चोंको छोड़कर कैवल्यको प्राप्त हुए। वे एक परमेश्वरको मानते थे और उसीके विषयमें उपदेश भी करते थे, किन्तु तीर्थ-यात्रा, रोजा-व्रत इत्यादि कठिन वन्धनोंके पूरे विरोधी थे। उनका उपदेश वड़ा प्रभाव-शाली और मर्मस्पर्शी होता था। उनकी मृत्युके उपरान्त उनके

चेलोंने उनकी वाणियोंके संग्रह करनेका बड़ा प्रयत्न किया और जो कुछ मिलीं, उन्हें एकत्रित करलिया।

गुरु नानक शाहने अपनी सन्तानोमेंसे किसीको अपनी धार्म्मिक गद्दीका उत्तराधिकारी नहीं बनाया, वरन् अपने अङ्गद नामक एक प्रिय शिष्यको गद्दीपर बैठाया। उन्होंने अपने चेलोंको शिष्य, सिख वा सिक्खकी उपाधियोंसे विभूषित किया था, इसी कारण एक सम्प्रदाय ही सिक्ख नामसे सम्बोधित होने लगा। पांचवें गुरु 'अर्जुन'ने बाबा साहबके निर्मित महावाक्यों एवं अन्य गुरुओंकी "वाणियों"का संग्रह किया, जिसको सिक्खलोग "आदि ग्रन्थ" अर्थात् "प्राचीन पुस्तक" कहते हैं। इस ग्रन्थका सबसे उत्तम भाग "जपजी साहब" कहलाता है;जिसमें गुरु नानकने अपने धर्म्मका तत्व अत्यन्त सरलता पूर्वक वर्णन किया है। "कबीर दास" और "बाबा फरीद" के वचन भी गुरु नानकने अपने ग्रन्थ साहबमे सम्मिलित किये हैं। "गुरु-ग्रन्थ साहब"के भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न समयोंके विषयमें हैं। गुरु-ग्रन्थ साहबके महावाक्य इस समयकी प्रचलित पञ्जाबी (गुरुमुखी) भाषामे हैं, यद्यपि उसमे बहुतसे हिन्दीके शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। सुप्रसिद्ध गुरु "गोविन्दसिंह"ने "ग्रन्थ साहब" में अपनी ओरसे अनेक महावाक्य जोड़ दिये हैं, जो ठेठ हिन्दीके हैं।

गुरु नानकके उपरान्त उनकी गद्दी पर जितने गुरु बैठे, सब उनके ही मतकी पुष्टि करते गये। आश्चर्य्यकी बात है, कि— जो गुरु नानक धार्म्मिक विषयोंमें बन्धनोंके कट्टर विरोधी थे,

उनके सहनिवासी जन, उनको प्रतिष्ठा तथा सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। गुरु नानक शाहकी, वाल्यावस्थासे ही सांसारिक विषयोंमे अरुचि थी, पर पिताके अनुरोधसे उन्होंने विवाह कर लिया था और सन्तान भी उत्पन्न हुई थी, किन्तु सांसारिक वैभवों पर वाल्यावस्थासे ही विरक्ति होनेके कारण शीघ्र ही कुटुम्बकी मोह-ममताको तोड़ वे यात्राके लिये निकल पड़े। उनका मर्दाना नामक एक सेवक छायाकी भांति सदा उनके साथ पर्यटन करता था। कहा जाता है, कि आप मुसल्मानोंके प्रधान तीर्थस्थान 'मक्का शरीफ'मे भी गये थे; कारण, कि आपका विचार हिन्दू और मुसल्मानोंको एक करनेका था। आपने वैराग्य ग्रहण करनेके समयसे ही अपने पैत्रिक धर्म्म पर आक्षेप करना प्रारम्भ करदिया था। गुरु नानक साहव पक्के अद्वैतवादी ('एको-ब्रह्मः द्वितीयो नास्ति'के पक्षपाती) थे। सम्राट् वावर आपकी वाणियोंको सुनकर वहुत प्रसन्न हुए थे और उनके प्रति सम्राटोंकी नाईं वड़ी प्रतिष्ठासे व्यवहार करते थे।

गुरु नानक शाह सन् १५३८ ई०में, कुल ३६ वर्षकी अवस्थामें, कर्तारपुर ग्राममें, अपनी स्त्री और वच्चोंको छोड़कर कैवल्यको प्राप्त हुए। वे एक परमेश्वरको मानते थे और उसीके विषयमें उपदेश भी करते थे, किन्तु तीर्थ-यात्रा, रोजा-व्रत इत्यादि कठिन वन्धनोंके पूरे विरोधी थे। उनका उपदेश वड़ा प्रभाव-शाली और मर्मस्पर्शी होता था। उनकी मृत्युके उपरान्त उनके

चेलोंने उनकी वाणियोंके संग्रह करनेका बड़ा प्रयत्न किया और जो कुछ मिलीं, उन्हें एकत्रित करलिया।

गुरु नानक शाहने अपनी सन्तानोंमेसे किसीको अपनी धार्म्मिक गद्दीका उत्तराधिकारी नहीं बनाया, वरन् अपने अङ्गद नामक एक प्रिय शिष्यको गद्दीपर बैठाया। उन्होंने अपने चेलोंको शिष्य, सिख वा सिक्खकी उपाधियोंसे विभूषित किया था, इसी कारण एक सम्प्रदाय ही सिक्ख नामसे सम्बोधित होने लगा। पांचवें गुरु 'अर्जुन'ने बाबा साहबके निर्मित महावाक्यों एवं अन्य गुरुओंकी "वाणियो"का संग्रह किया, जिसको सिक्खलोग "आदि ग्रन्थ" अर्थात् "प्राचीन पुस्तक" कहते हैं। इस ग्रन्थका सबसे उत्तम भाग "जपजी साहब" कहलाता है; जिसमें गुरु नानकने अपने धर्म्मका तत्व अत्यन्त सरलता पूर्वक वर्णन किया है। "कबीर दास" और "बाबा फरीद" के वचन भी गुरु नानकने अपने ग्रन्थ साहबमें सम्मिलित किये हैं। "गुरु-ग्रन्थ साहब"के भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न समयोंके विषयमें हैं। गुरु-ग्रन्थ साहबके महावाक्य इस समयकी प्रचलित पञ्जाबी (गुरुमुखी) भाषामें हैं, यद्यपि उसमें बहुतसे हिन्दीके शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। सुप्रसिद्ध गुरु "गोविन्दसिंह"ने "ग्रन्थ साहब" में अपनी ओरसे अनेक महावाक्य जोड़ दिये हैं, जो ठेठ हिन्दीके हैं।

गुरु नानकके उपरान्त उनकी गद्दी पर जितने गुरु बैठे, सब उनके ही मतकी पुष्टि करते गये। आश्चर्य्यकी बात है, कि—जो गुरु नानक धार्म्मिक विषयोंमें बन्धनोंके कट्टर विरोधी थे,

उन्हींके धर्म्ममें धीरे धीरे अनेक बन्धनोंका समावेश होने लगा! सिक्ख-धर्म्ममें दीक्षित होनेके कुछ नियम निश्चित हुए, जिनका अति संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

सिक्ख लोग शुद्ध जलमें मिश्री डालकर उसे तलवारसे घोलते थे और ऐसा करते समय ग्रन्थ साहबके कतिपय वचनोंको पढ़ते जाते थे। जो मनुष्य सिक्ख-धर्म्म स्वीकार करना चाहता था, उसको यह जल पिलाया जाता था और जो शेष रह जाता था, वह उसके सीस तथा अन्यान्य अङ्गोंपर छिड़क दिया जाता था। इस जल, अर्थात् शर्बतको सिक्ख लोग 'अमृत'के नामसे सम्बोधन करते थे और यह नियम पूरा हो जानेपर सब एकत्रित सिक्ख "श्रीवाह गुरूजीका खालसा" और "वाह गुरूजीकी फतह" इन वाक्योंका उच्चस्वरसे उच्चारण करते थे।

धीरे धीरे यह धर्म्म "मालवा" और "मांझ" के जाट-जमीन्दारों तथा अन्यान्य छोटी-बड़ी जातियोंमें फैल गया। गुरु गोविन्दसिंहने इन धर्म्मावलम्बियोंको समयानुसार एक योद्धाओंका दल बना दिया। इसका मूल कारण मुगल-सम्राटोंका सिक्ख-गुरुओं पर अत्याचार करना हुआ। विशेष कर आलमगीर वा औरङ्गजेबने ही पहले पहल इस शत्रुताका बीज बोया था। औरङ्गजेबने गुरु गोविन्दसिंहजीके पिताका सिर कटवा लिया था! उस समय गुरु गोविन्दसिंहकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्षकी थी। पहले उन्होंने हिन्दी, फारसी, पुनः संस्कृतमें पूरा ज्ञान प्राप्त किया। जब वे तीस वर्षके हुए, तब मुसलमानोंसे लोहा लेनेके

लिये अपने शिष्योंको वीर और लड़ाका बनानेमें कटिवद्ध हुए। इस कार्य्यमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने अपने अनुचरोंके नाममें 'सिंह' अर्थात् 'केशरी'की उपाधि लगानी प्रारम्भकी। अन्तको गुरु गोविन्दसिंह मुगल-सम्राट् वहादुरशाहके साथ दक्षिणके युद्धमें गये और सन् १७०७ ई० में गोदावरी नदीके तटपर 'नादिरा' नामक स्थानमें एक अफगान पठानके हाथसे मारे गये! गुरुजी निराकार ईश्वरके उपासक होने पर भी दुर्गादेवीके सच्चे सेवक थे।

हम ऊपर कह चुके हैं, कि सिक्ख-धर्म्ममें विशेषकर 'जट्ट' वा 'जाट' लोग ही आये। जाटलोग अपने निवासस्थानके कारण दो भागोंमें विभाजित हुए, जिनमेसे एकको 'मालवा' और दूसरेको 'मांझ' कहते हैं। मांझ पञ्जाव देशके उस भागका नाम है, जो सतलज नदीके उत्तर, वा यों कहिये, कि द्वावःहारीके दक्षिणमे है। और मालवा उस भू-भागका नाम है, जो सतलजके दक्षिणकी ओर दिल्ली और वीकानेर तक चला गया है। मालवाके सिक्ख, पुलकिया-कुलको अपना सरदार और पूर्वपुरुष मानते हैं और महाराज पटियाला, नाभा, जींद, वहादुर, मालूद, वाढुरकान, जन्दा, दयालपुर, रामपुर, कोट, धवन इत्यादि इसी कुलसे उत्पन्न हैं। यह लोग मुख्यतः वादशाह दिल्लीकी प्रजा और करद राज्य कहलाते थे, किन्तु गुरु गोविन्दसिंह साहवके समयमें सिक्ख-धर्म्ममें आकर मुल्क लेने पर उतारू हुए और क्रमशः भिन्न भिन्न स्थानों पर अपनी जागीरें और रियासतें नियत कर

लीं, जिनमेंसे कतिपय अभीतक वर्त्तमान हैं। जैसे पटियाला, नाभा, फरीदकोट इत्यादि।

महाराजा रणजीतसिंहके समयसे पहले सिक्ख-सरदारोंके बारह कुल (मिसिलें) पञ्जाबके भिन्न भिन्न भागोंपर अधिकारी हो गये थे और समय पर ७० हजार सवार युद्ध-क्षेत्रमें ला सकते थे। इनका वर्णन पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ नीचे दिया जाता है:—

(१) 'भङ्गी मिसिल'—जिसके सञ्चालक हरीसिंह, झण्डी-सिंह और झण्डासिंह थे। यह जाट खेतिहर (किसान) थे। इस कुल वा मिसिलका यह नाम इस कारण प्रख्यात हुआ, कि इसके आदि पुरुष भङ्गका व्यवहार अधिकतर करते थे। इस मिसिलका राज्य रणजीतसिंहके राज्यमें मिल गया। इस जागीरसे लड़ाईके समय १० हजार सवार लड़ाईके मैदानमें आया करते थे।

(२) 'रामगढ़िया मिसिल'—इसका सरदार जस्सासिंह था। इसकी जागीर भी रणजीतसिंहके राज्यमे मिल गयी। इससे तीन सहस्र सवार रणभूमिमें आया करते थे।

(३) 'कन्हैया मिसिल'—यह जागीर लाहौरके पूर्व-ओर थी। इसका सरदार जस्सासिंह था। यह जागीर भी रणजीत-सिंहके राज्यमें मिलाली गयी थी। इससे ८ सहस्र सवार युद्ध-क्षेत्रमें उपस्थित होते थे।

(४) 'नकिया मिसिल'—इसका राज्य लाहौरके पश्चिम

और मुल्तानके निकट था। यह राज्य भी लाहौरके राज्यमे मिल गया। इस राज्यसे २०,००० सवार लड़ाईके समय रणभूमिमें उपस्थित होते थे।

(५) 'अहलूवालिया मिसिल'—इसका सरदार जस्सासिंह कलाल था। इसका राज्य सतलजके आर-पार था, यह राज्य भी महाराजा बहादुरके अधिकारमें हो गया था।

(६) 'दलील मिसिल'—इसका सरदार तारासिंह था। इसके इलाके लाहौरके पूर्वमें थे। इसके अनेक भाग लाहौर-राज्यमें सम्मिलित हो गये।

(७) 'निशानवालिया मिसिल'—जिसके प्रधान पुरुष सरदार सङ्गतसिंह और मेहरसिंह थे। इनके पास सिक्खोंका झण्डा (निशान् अर्थात विजय सूचक पताका) रहता था। इनके राज्यसे लाहौर-राज्यको १२ सहस्र लड़ाके सवारोंकी सहायता मिला करती थी।

(८) 'फैज़ुल्लाहपुरिया मिसिल'—जो सिंघापुरके नामसे प्रसिद्ध थी। इसके सरदार कपूरसिंह और खुशहालसिंह, अमृतसरके समीपवर्ती फैज़ुल्लाहपुर नामक गांवमें रहते थे। उन्होंने इस मौजेका नाम बदल कर सिंघापुर रख दिया। उनकी अमलदारी सतलजके पश्चिम और पूर्वमें थी। सवारोंकी संख्या २५०० सहस्र थी।

(९) 'करोड़ासिंघिया मिसिल'—इसका सरदार करोड़ासिंह था, पीछे बघेलसिंह हुआ। इसका कुछ इलाका महाराजा

साहबने अपने हस्तगत कर लिया था। इसके सवारोंकी संख्या १२००० सहस्र थी।

(१०) 'शहीदी मिसिल'—इसके सरदार कर्मसिंह और गुरुबख्शसिंह थे। इस मिसिलके पूर्वपुरुष पटियालेके पश्चिम, दमदमा नामक स्थानमें मुसल्मानोंके हाथसे मारे गये थे। इनका राज्य सतलजके पूर्वमें था और सवारोंकी संख्या २००० सहस्र थी।

(११) 'पुलकिया और भिखिया मिसिल'—जिसके सरदार राजा आलासिंह और अमरसिंह मालिक-पटियाला एकके उपरान्त दूसरे हुए। फूल एक प्रसिद्ध जाट था, जिसके वंशज, पटियाला, नाभा, जींद और कैथल इत्यादिके सरदार थे। इसके सवारोंकी संख्या ५००० सहस्र थी।

(१२) 'सुकर चकिया मिसिल'—इसके सरदार चरित्रसिंह महाराजा रणजीतसिंहके परदादा थे। इस कुलके लोग सुकरचकियाके जाट थे। यह जागीर विशेष प्रशंसा करनेके योग्य है, क्योंकि अन्तको इसने यहां तक अपना प्रभाव बढ़ाया, कि इसके सरदार महांसिंह अन्यान्य मिसिलोंमें प्रधान माने गये और इनके पुत्र रणजीतसिंहने वह सम्मान प्राप्त किया, कि उन्हें 'शेर-पञ्जाब' अर्थात् 'पञ्जाब-केशरी' की अति प्रशंसास्पद उपाधि प्राप्त हुई।

पूर्व वर्णित सिक्ख-सरदारोंमें प्रायः छोटा-मोटा युद्ध हो जाया करता था और उन लोगोंके अधिकारकी सीमा बहुत शीघ्र परि-

वर्तित होती रहती थी। कभी कभी विकट अवसरोंके आपड़ने पर सिक्ख-सरदार एकाकर मुसल्मान आक्रमणकारियोंका सामना करते थे, परन्तु वहुधा प्रत्येक मिसिल जुदा जुदा ही काम किया करती थी और एक साथ मिल कर काम करने पर बाध्य न थी। अमृतसरमें दीवाली और वैसाखीके मेलोंके अवसर पर दो वार सिक्खोंकी एक वड़ी सभा (सङ्गत) वैठती थी। जव सिक्ख-सरदार लोग अमृतसरसे स्नान करके निकलते थे, तव उनकी एक और सभा 'गुरुमती'के नामसे वैठती थी। उसमें विशेष विशेष लड़ाइयों वा विशेष विशेष पन्थ सम्बन्धी वातो पर विचार होता था और उसी सभामें इन सव वातोंका निर्णय भी हो जाता था।

जव कई मिसिलोंके लोग एकत्रित होकर देशसे कुछ रुपया युद्ध-करके स्वरूप जमा करते थे, तव ऐसी सेनाका नाम 'खालसाजी' और रुपयेको 'रक्ख' का रुपया, अर्थात रक्षित-कोष कहते थे। जव ऐसी सेनाएं किसी देशको जीतलेती थीं, तव उनका सरदार उन जीतनेवाले सिपाहियोंमें उस देशको वांट देता था। ऐसे सिपाहियोंके छोटे छोटे दलका मुखिया कभी कभी अपने सिपाहियोंकी मजदूरीके वदले अपने प्रधान सरदारसे रुपया भी लेता था, क्योंकि वे सिपाही मासिक वेतन नहीं पाते थे। जव लूटका माल वा कोई जीता हुआ राज्य वटता, तव पहले प्रधान सरदारका भाग निकाल कर अन्य सरदारोंको उनके सवारोंकी संख्याके हिसाबसे दिया जाता था। इन

भागोंका नाम पतियाल था। प्रत्येक प्रधान सरदार अपने राज्यमें स्वतन्त्र था और जीते हुए राज्य भी इसी शर्त्त पर लिये जाते थे, कि उनकी स्वतन्त्रतामें कभी और किसी प्रकारका हस्तक्षेप न किया जायगा।

उपर्युक्त बातोंसे अनुमान किया जाता है, कि सिक्खोंमें कोई व्यक्ति भी किसीके अधीन न था। प्रत्येक सिक्ख-सरदार अपने आपको स्वतन्त्र मानता था और किसीकी आज्ञा-पालन करने पर वाध्य न था। क्योंकि मुसल्मानोंकी तरह पहले सिक्खोंमें जाति-भेद नहीं माना जाता था और सब सिक्ख-आपसमें भाई भाईका सा वर्ताव करते थे। धीरे धीरे सिक्ख-धर्म्ममें भी अब जाति-भेद हो गये हैं।

राज्यके प्रारम्भमे सब सिक्ख-सरदार बराबरके हिस्सेदार थे, कोई किसीसे बड़ा या बलिष्ठ न था, कि वह दूसरेको अपने अधीन करनेका विचार करता—किन्तु कुछ दिनोंके बाद कोई कोई सरदार अपनी बहादुरी तथा बुद्धिमानीके कारण अधिक प्रभावशाली होगये और उनसे छोटे तथा पड़ौसी जागीर-दारोंको अपने शत्रुओंसे बचनेके लिये उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

सिक्खोंकी मध्यवर्ती दशामे, जब कि वे बहुत बल प्राप्त कर चुके और बड़ी बड़ी रियासतों और जागीरोंके स्वामी होगये। प्रत्येक सवारको, जो किसी सरदारके साथ लड़ाईमें जाता था, घोड़ा और तोड़ेदार बन्दूक आवश्यक होती थी। सरदारका

यह धर्म्म था, कि वह अपने सवारोंकी सहायता करे और जब युद्धमें विजय प्राप्त हो, तब ईश्वर और गुरुके नामपर उन्हें लूटकी आज्ञा दे। मासिक वेतनका नियम एकदम नहीं था, सरदार और उसके सहगामी सवारोंका पालन-पोषण, शत्रुओंकी सामग्री लूटनेसे होता था। वीरता प्रत्येक सरदारका आवश्यकीय गुण था। जो मनुष्य "अमरसिंह मजीठिया" की नाईं वृक्षमें तीर पार कर सकता था—या जो मनुष्य "हरीसिंह नलुवा"की* नाईं तलवारके एक ही वारसे सिंहका शिरःच्छेदन कर सकता था, वही मनुष्य सरदार माना जाता था और उसकी ख्याति सुन कर दूर दूरके वीर उसके झण्डेके नीचे चले आते थे। धीरे धीरे वीरता और बिरादरीके बड़प्पनके ध्यानसे सिक्खोंमें सरदारीका पद नियुक्त होने लगा और इसके उपरान्त, राजा और सम्राट्का पद भी निश्चित हुआ।

सिक्खोंकी प्रसिद्धि, उनके बाहुबलकी पराकाष्ठासे ही नियत हुई और सच तो यह है, कि संसारकी सभी बलवती जातियां इसी प्रकार गौरवको प्राप्त हुआ करती हैं। प्रत्येक सिक्ख-सरदारकी यह कामना रहती थी, कि वह अपने बल तथा बुद्धिसे अपने अनुचर एकत्रित करे। सरदारोंको इस बातका तनिक भी ध्यान न था, कि जो लोग उनके झण्डेके नीचे आकर एकत्रित होते हैं, वे किस समाज या जातिके हैं! हां, इतना अवश्य देख लिया जाता था, कि वे सवारका काम कर सकते और लड़

*"हरीसिंह नलुवा"की जीवनी हमारे यहां ।) आनेमें मिलती है।

सकते हैं, वा नहीं। इस महान् परिवर्त्तनके समयमें प्रत्येक सिक्ख पूरा सवार था और भली प्रकार युद्ध कर सकता था। गांव प्रायः ऊंचे स्थलों पर बसते थे, जिसमें मैदानसे आनेवाले शत्रुओं-को भली प्रकार देख सकें। उनकी गलियां ऐसी सङ्कीर्ण होती थीं, जिनमें कठिनतासे दो मनुष्य सटकर जासकते थे। उनमें जानेका केवल एक ही द्वार रहता था। निदान प्रत्येक ग्राम एक प्रकारका दुर्ग था। लोग अपने पड़ोसियोंको शत्रु समझते थे और किसान लोग खेत जोतते समय भी तलवार, बन्दूक अपने पास रखते थे। भूमि, घोड़ा और स्त्री उसी व्यक्तिका रक्षित रह सकता था, कि जिसके स्वामीमें उसके बचानेकी शक्ति हो। यवनों (मुसल्मानों) को लूटना और दिल्लीके यवन-सम्राटोंकी रसद तथा अन्यान्य सामग्रीकी गाड़ियोंपर हाथ साफ करना प्रत्येक सिक्खका पहला काम था। सिक्ख लोग अन्य जातियों-की अपेक्षा अधिक तर डाकू थे और अपनी जातिवालों पर भी डाका डालनेमें सङ्कोच न करते थे, वरन् लूट-मारको वे लोग एक गौरवका काम समझते थे। परन्तु इतना आवश्यक था, कि वे वीरोंकी नाईं छापा मारते थे, इतर डाकुओंकी तरह चोरोंकी नाईं नहीं। स्त्रियोंका सतीत्व-भङ्ग वा पुरुषों पर व्यर्थ अत्याचार करना उनकी नीतिके विरुद्ध था। हां, इतना अवश्य था, कि जाट लोग लूट-मारके समय कम उम्रकी नवयौवना जाट-स्त्रियोंको भगा ले जाते थे। जाटनियां वीरताके कार्यों से प्रायः प्रसन्न होती थीं और वीर जाटोंको प्रसन्नता पूर्वक अपना पति स्वीका-

रकर लेती थीं, चाहे वे किसी जातिके हो और चाहे उन्होंने उनके माता-पिता या अन्य सम्बन्धियोको मार ही क्यों न डाला हो !

सिक्खोंकी फौजमें प्रायः सवार ही रहा करते थे जो 'काठी-बराड' के नामसे प्रसिद्ध थे। पैदल फौजकी उतनी प्रतिष्ठा न होती थी। हां, अकाली पैदल फौज भी सम्मानकी दृष्टिसे देखी जाती थी। ये सिक्खोंमें पवित्र लड़नेवाली जातिके लोग माने जाते थे, जिस प्रकार, कि यवनोंमे 'गाजी' होतेहैं। इनका वस्त्र नीले रङ्गका और सिर पर एक लोहेका चक्कर लगा रहता था, जिसे यहलोग सौन्दर्य्य तथा सिरकी रक्षाके लिये रक्खा करते थे! इनकी पगड़ीमें एक छुरी और गलेमें एक तलवार लटका करती थी और इनके हाथमें एक मोटा डण्डा भी रहा करता था। यह लोग भङ्ग पीकर जिस नगरको घेर लेते थे, उसपर बड़ी वीरतासे सबसे पूर्व आक्रमण करते थे। युद्धके समय तो इनसे बड़ी सहायता मिलती थी, पर शान्तिके समय इनकी लूट-मार असह्य होजाती थी। यह लोग परले सिरेके व्यभिचारी होते थे। सिक्खोंको प्रायः तलवारके युद्धका अभ्यास था। पैदल फौज तीर, कमानका भी प्रयोग करती थी। कतिपय सेनानी तोड़ेदार बन्दूकें भी रखते थे। उन दिनों बारूद बहुत कम मिलती थी और सिक्खोंको स्वभावतः तोड़ेदार बन्दूकोंके प्रयोगमें अनिच्छा होती थी। इसी कारणसे इनके यहां तोपोंका एकदम अभाव था। रणजीतसिंहने इटली और फ्रान्सके अफसरोंकी सहायतासे तोपखाना तैयार किया

था, पर उसमे अधिकतर मुसल्मान ही भरती होते थे। सिक्खोंको इससे (तोपखानेसे) बड़ी घृणा थी। यदि कोई सिपाही युद्धमें घायल होता था, तो उसको पेन्शन मिलती थी। यदि कोई सिपाही युद्धमें मारा जाता था, तो उसका बेटा या अन्य कोई निकटवर्ती सम्बन्धी उसके स्थान पर नियुक्त किया जाता था। सिक्खोंकी एक और बात भी कहने योग्य है, अर्थात् इनके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सरदारोंके नाममें कोई न कोई उपाधि अवश्य लगी रहती थी और हिन्दुओंसे विभिन्नता करनेके लिये वे अपने नाममें 'सिंह' शब्द आपसे आप जोड़ लेते थे। जैसे जस्सा-सिंह अहलूवालिया, अर्थात् जो 'अहलू' गांवमें उत्पन्न हुआ था। गुणवाचक उपाधियोंकी भी सिक्खोंमें कमी नहीं थी। उदा-हरणार्थ यहांपर उनमेंसे कुछ लिखी जाती हैं :—

निधानसिंह 'वजहत्था' (फुर्तीला) लहनासिंह चमनी, मेह-रसिंह लैंना, (ऊँचे कदका होनेसे) शेरसिंह कमला, (मूर्खताके कारण) कर्म्मसिंह निर्मला (शुद्ध रहनेसे)। इन गुणवाचक शब्दोंसे कोई नेकी, वदी, वा अन्य गुण प्रकट होते हैं। कतिपय कुलोंमें ये उपाधियां वरावर पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती हैं, जो, कि उन कुलोंके गर्वका कारण होती हैं।

रणजीतसिंहका वंश-परिचय ।

पाठकोंको यह न समझना चाहिये, कि संसारके अन्य सम्राटोंकी भांति, रणजीतसिंह भी किसी प्राचीन राज-वंशके रत्न थे। वरन् जहां तक इतिहासोंसे पता चल सकता है, वह केवल उनकी चार पीढ़ियों तकका है। उनके पूर्व पुरुष कोई राजा वा महाराजा न थे, केवल साधारण सिक्ख-सरदार थे, जिनकी एकमात्र जीविका लूट-मार थी। किन्तु उन्होने अपनी वीरतासे अपनी जातिमे बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त करली थी। इस वंशकी जागीरका नाम 'सुकर चकिया' था और इनके कुलका सम्बन्ध 'सिन्धान वालिया' कुलसे बहुत था। ये दोनों कुल 'सांसी' कुलसे निकले थे। यद्यपि यह दोनों कुल वाले अपनेको राजपूत बतलाते हैं, पर जहांतक सुना जाता है, 'सांसी' लोग पश्चिमकी एक साधारण जातिसे उत्पन्न हैं। अमृतसरसे पांच मील के अन्तर पर एक गांव—'राजा सांसी' के नामसे इसी कुल वालोंका अब तक बसा हुआ है।

पूर्वोक्त दोनों कुलोंका संस्थापक एक 'बुद्धसिंह' नामक डाकू था*। उसके पास अबलकी रङ्गकी 'देसी' नाम्नी एक घोड़ी

---

* पाठक ! मुझे रणजीतसिंहके पूर्व पुरुषोंकी निन्दा करनेका अपराधी ठहराते होंगे, किन्तु इच्छा न रहनेपर भी, इतिहास मुझे सत्य घटना लिखनेपर बाध्य करता है। इसलिये पाठक क्षमा करेंगे।

—लेखक।

थी। वह वीर पुरुष उसी घोड़ीपर सवार होकर देहातोंमें लूट-मार करता था। उस प्रान्तके लोग प्रायः उसकी लूट-मारसे दुःखित होगये थे। उसका नाम सुनकर लोग कांपते थे! उसके शरीरपर बन्दूक, बर्छी और तलवारके ४० चिन्ह थे! अन्तको सन् १७१८ ई० में वह परलोकगामी हुआ और 'चन्दासिंह' तथा 'नवधसिंह' नामक दो लड़के छोड़ गया। वह दोनों भी अपने पिताकी भांति वीर और साहसी थे। उन्होने सन् १७३० ई० में "सुकर चकिया" गांवको नये सिरेसे बसाया और बहुतसे वीरोंको एकत्र कर धीरे धीरे आस-पासके अनेक गांवों पर अपना अधिकार कर लिया।

सिन्धान वालिया, सरदार चन्दासिंहके औरससे उत्पन्न थे और रणजीतसिंहके प्रपितामह 'नवधसिंह' थे, जो मजीठ नामक स्थानमें अफगानोंसे युद्ध करते समय मारे गये थे। उस समय उनके बड़े बेटे 'चरित्रसिंह' की अवस्था केवल पांच वर्षकी थी। वे थोड़े ही समयमें एक बलवान सरदार होगये थे। उन्होंने सरदार 'जस्सासिंह' और भङ्गी-सरदारोंसे मेल-जोल बढ़ाकर बहुतसी फौज एकत्र करली तथा लाहौरके 'गवर्नर' 'ईदखां' को उसके मुख्य स्थान गुजरानवालासे मारकर निकाल दिया और उसकी बहुतसी तोपें तथा अन्यान्य सामग्रियां छीन लीं।

इस समय 'जम्बू' का राजा 'रणजीतदेव' था, जो अपने बड़े बेटे 'बृजराज'से अप्रसन्न हो, उसको उत्तराधिकारत्वसे वञ्चित रखकर अपने छोटे बेटे दयालसिंहको गद्दी देना चाहता

था। बृजराजने विद्रोहका झगडा खड़ा किया तथा चरित्र-सिंहसे मदद मांगी और अपने बापको वञ्चित रखनेके वदले, बहुतसा रुपया कर-स्वरूप देना स्वीकार किया। चरित्रसिंह-की रणजीतदेवसे शत्रुता थी। इस अवसरको अच्छा जानकर उन्होंने 'कन्हैया मिसिल'के सरदार जैसिंहको अपने साथ मिला लिया और जम्बूके राज्यमे 'वसन्ती' नदीके किनारे फौज उतार दी। जम्बूके स्वामीको इसका समाचार मिल गया। उसने चावा, नूरपुर, वुशायर और कांगड़ेके सरदारोसे मदद मँगवायी और भङ्गी-सरदार झण्डासिंहको भी सहायताके लिये वुलवाया। पूर्वोक्त नदीके किनारे एक छोटासा युद्ध हुआ, जिसमे चरित्रसिंह अपनी तोड़ेदार वन्दूकके फटनेसे मर गये।

चरित्रसिंह ४५ वर्षकी अवस्थामें अपने 'महांसिंह' और 'सोहिजसिंह' नामक दो वेटे तथा राजकुँअर नाम्नी एक कन्याको छोड़कर मरे थे। वे पहले एक साधारण डाकू थे, किन्तु तल-वारके जोरसे वहुतसे इलाकोंके स्वामी हो गये, जिनकी वार्षिक आय, तीन लाख रुपयोंके लगभग थी। महांसिंहकी अवस्था इस समय 'लेपेलग्रिफेन'के कथनानुसार ११ वा १२ वर्ष और 'हेनरीटी प्रिन्सेप'के कथनानुसार १० वर्षकी थी। उनकी मा और सर-दार जैसिंह कन्हैयाने एक मेहतरको घूस देकर, झण्डासिंहको मरवा डाला, जो अपने थोड़ेसे साथियोंके साथ घोड़े पर सवार होकर कैम्पमे जा रहा था। इस सरदारकी मृत्युसे झगड़ा आपसे आप मिट गया और प्रतिद्वन्दी सेनाएं

अपने देशको चली गयीं । महांसिंहने वृजराजदेवसे सन्धि करली ।

चरित्रसिंहकी मृत्युके एकवर्ष बाद सन् १७७४ ई० में महांसिंहने झींदके स्वामी राजा गजपतिसिंहकी भाग्यवती कन्या राजकुँअरसे व्याह किया । महांसिंह वड़ी भारी वारात लेकर झींदमें गये और फुलकिया कुलके सरदार उनकी अगवानीको आये । विवाहके भोज और आनन्दादिके समय नाभा और झींदके बीच एक झगड़ा उत्पन्न हो गया । कारण यह था, कि बारातियोंने चराईकी भूमिसे घास काट ली थी । नाभाके कार्य्यकर्त्ताओंने इनपर आक्रमण कर दिया । झींदके राजा गजपतिसिंह विवाहका अवसर होनेके कारण चुप रह गये । जब उन्हें अवकाश मिला, तव उन्होंने हमीरसिंह (नाभाके राजा) को पकड़ कर उसके वहुतसे इलाकों पर अधिकार जमा लिया । ६ वर्षके उपरान्त पूर्वोक्त रानी (राजकुँअर) के गर्भसे महाप्रतापी "रणजीतसिंह"ने जन्म लिया ।

रणजीतसिंहका जन्म ।

रणजीतसिंह सन् १७८० ई० में गुजरानवालामे उत्पन्न हुए थे। उस समय उनके पिताने धन और वैभवके लोभसे धोखे और फरेबसे काम लेना प्रारम्भ किया था। वृजराजदेव अपने पिताके मरने पर जम्बूका राजा माना गया, किन्तु वह व्यभिचारी था। भङ्गी-सरदारोंने उसके वहुतसे इलाके छीन लिये। महांसिंहकी मित्रतासे वृजराजको यह आशा हुई, कि अपने खोये हुए इलाके फिर प्राप्त हो जायँगे। इस वीचमें कन्हैया और भङ्गी-सरदार राजासे शत्रुता करनेके लिये एक राय हो गये थे। वृजराजने महांसिंहसे सहायता मांगी। महांसिंहने कन्हैया-सरदार पर आक्रमण किया, किन्तु मुँहकी खायी। जम्बूके राजाको कन्हैया-सरदार हकीकतसिंहको ५० हजार रुपया हानि वा करके स्वरूप देना पड़ा। जब वह रुपया न दे सका, तो हकीकतसिंहने महांसिंहको उभाड़ा, कि 'आओ हम तुम मिल कर जम्बू पर चढ़ाई करें और उसे आधोआध बाटलें।'

महांसिंह बड़ी धूमधामसे वहुत सी फौजके साथ गये और हकीकतसिंहसे पहले ही जम्बू पर एकाएक आक्रमण कर दिया। राजामें आक्रमण रोकनेकी शक्ति नहीं थी। वह पहाड़ोंकी तराईमें छिप गया। इतिहासोंमें इस बातके वहुतसे प्रमाण पाये जाते हैं, कि जेनरलों और राजाओंने सहस्रों बार अपने वचन भङ्ग कर दिये हैं। रणजीतसिंहके समयमें

भी इसके उदाहरण पाये जाते हैं। काबुलके वजीर फतहजङ्ग-ने रणजीतसिंहसे छल करके काश्मीर जीत लिया था। महां-सिंहने नगरको भलीभांति लूटा। महाराजाके महलमें लूट मचा दी और बहुतसा लूटका माल लेकर अपने देशको चला आया। हकीकतसिंह बहुत छटपटाया, पर कुछ कर न सका और सम्भ-वतः इसी शोकमें थोड़े दिन बाद मर गया!

हकीकतसिंहका पुत्र जैसिंह इस कार्य्यवाहीसे बहुत असन्तुष्ट हुआ और प्रतिद्वन्दिताके लिये बड़े बड़े प्रबन्ध करने लगा। उसने महांसिंहका बहुतसा इलाका छीन लिया बाध्य होकर उनको (महांसिंहको) क्षमा-प्रार्थी होना पड़ा। परन्तु जैसिंहने जम्बूकी लूटके मालमें विना भागलिये क्षमा करना स्वीकार न किया। महांसिंहको यह कब स्वीकार था, कि घर आया हुआ धन इस प्रकार देदे। उन्होंने कन्हैया-सरदारको नीचा दिखानेकी इच्छासे सरदार 'जस्सासिंह' रामगढ़िया और 'राजा संसारसिंह' कांगड़े वालेको गांठा और अन्य सरदार, जो जैसिंह-से अप्रसन्न थे, महांसिंहके झण्डेके नीचे आ गये। सबने मिल-मिला कर जैसिंहके निवासस्थान 'वटाला' पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें जैसिंहका पुत्र चन्दगुरुवख्शसिंह काम आया। पूर्व्वोक्त सरदारसे इस परामर्श पर सन्धिकी गयी, कि वह कांगड़ेका दुर्ग संसारसिंहको लौटा दे और जस्सासिंह राम गढ़ियेका कुल इलाका, जो उसने छीन लिया था, फेर दे। गुरुवख्शसिंह (जो मारा गया था) की कन्या

'महताबकुंअर' ही हमारे चरित नायक रणजीतसिंहसे व्याही गयी थी।

महांसिंह जीवन भर युद्धमें लगे रहे। यद्यपि सारे जीवनके उलट-फेरमे उनका इलाका इतना बड़ा न हुआ, कि उनको राजाकी उपाधि दी जाती, पर तौभी समस्त पञ्जाबमें वे सबसे बड़े इलाकेदार होगये और उस विद्रोहके समयमें भी पञ्जाबके लोग मालामाल हो गये, तथा चारों ओर शान्ति फैल गयी। अब हम उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके होनहार जगत् प्रसिद्ध पुत्र 'रणजीतसिंह' का वृत्तान्त लिखना प्रारम्भ करते हैं।

सन् १७९० ई० मे महांसिंहने कबीलाछटके बलवान यवन-सरदार 'गुलाममुहम्मद' पर आक्रमण किया और उसके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। गुलाममुहम्मदके साथ उनकी पहलेसेही प्रायः छेड़छाड़ रहा करती थी। उस सरदारके चाचा हश्मतखांने उस हाथी पर चढ़कर, जिसपर रणजीतसिंह सवार थे, उन्हें मारना चाहा, कि साथ ही उनके एक नौकरने हश्मतखांका सिर काट लिया। यदि इस समय वीर रणजीतसिंह मारे जाते, तो पञ्जाब और भारत ही नहीं, इङ्गलैण्डके इतिहासोंमें भी बहुतसे उलटफेर होजाते।

सन् १७९१ ई० में गुजरातके स्वामी गूजरसिंहने स्वर्गवास किया, तो उसकी जगह उसका पुत्र साहबसिंह गद्दी पर बैठा। महांसिंहकी बहिन साहबसिंहसे व्याही गयी थी, किन्तु वह

अपने सम्बन्धियोंसे अपने राजकीय प्रबन्धमें हस्तक्षेप न करान
चाहता था। यह अवसर गुजरात पर अधिकार करनेका अच्छ
था। साहबसिंह सुकरचकिया-कुलकी प्रतिष्ठा न मानता था
जब महांसिंहको इसबातके चिन्ह दीख पड़े, तो उन्होंने साहब
सिंहके दुर्ग 'सुधरान'को घेर लिया। साहबसिंहने इस विपत्ति
भङ्गी-सरदारों और कर्मसिंह दोलू (जो चनीवटका भङ्गी-सरदार था
से सहायता मांगी। वह लोग बहुतसी फौज लेकर आये औ
महांसिंहसे लड़नेकी शक्ति रखनेपर भी उनकी फौजके इर्द-गि
घूमते और रसद इत्यादि लूटते रहे। महांसिंहने साहस कर
भङ्गीसरदारोंका कैम्प लूट लिया और पुनः नियमानुसार दुर्गक
घेरा प्रारम्भ किया। इसी समय वे (महांसिंह) कठिन रोगसे
ग्रस्त हुए और अपने मुख्यस्थान गुजरानवालामें आकर कुल २९
वर्षकी अवस्थामे मर गये!

रणजीतसिंहका वाल्य चरित्र।

रणजीतसिंहकी सास सदाकुँअर, बड़ी चतुर, योग्य और राजनैतिक विषयोंमें बड़ा भाग लेने वाली थी। पिताके मरनेपर रणजीतसिंहकी अवस्था कुल १२ वर्षकी थी। उनकी मा उनकी संरक्षक नियुक्त हुई और महांसिंहका मन्त्री लखपतसिंह राज्यका प्रबन्धकर्त्ता नियत हुआ। सदाकुँअरके पति भी इसी बीचमे मर चुके थे। उस स्त्रीने सोचा, कि रणजीतसिंहकी फौजसे इस प्रकार काम लेना चाहिये, कि मेरी और इनकी जागीरोंमे दूसरोंको हस्तक्षेप करनेका अवसर न मिले। उसने कन्हैया और सुकर चकिया इन दोनों मिसिलोंके सारे अधिकार अपने हाथमे रक्खे और सबसे पहले रामगढ़ियोंसे प्रबन्ध ठीक किया। सन्१७९६ई० मे अपनी और रणजीतसिंहकी फौज लेकर उसने सरदार जस्सा-सिंह रामगढ़ियाके इलाकेपर (जो व्यासाके किनारे था) आक्रमण किया। किन्तु व्यासामें संयोगसे इतनी बाढ़ आयी, कि सदाकुँ-अरके अनेक सिपाही, घोड़े और ऊंट, वह गये तथा रणजीतसिंह बड़ी कठिनतासे जान लेकर गुजरानवालाके दुर्गमे भाग आये।

रणजीतसिंहने वाल्यावस्थामें कुछ भी शिक्षा न पायी थी, क्योंकि सिक्खोमें शिक्षा द्वितीयाका चन्द्र थी और किसीको पढ़-ने-लिखनेका शौक न था। इसके विरुद्ध, जिसमें वे राज-कार्य्य-को न सम्हाल सकें, नौजवानीकी तरङ्गो और इच्छाओंको पूरा करनेका पूरा पूरा अवसर दिया जाता था। उनको किसी भाषाका

लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया गया था। अभी लखपतसिंह और रणजीतसिंहकी माताकी संरक्षताका समय नहीं बीता था, कि उनका दूसरा व्याह नकिया—सरदारकी कन्या राजकुँअरसे कर दिया गया।

माताका स्वर्गवास।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें रणजीतसिंह अपनी जागीरका काम करने लगे और उन्होंने दीवान लखपतसिंहको पदच्युत कर दिया। फिर वे अपनी माता और सासकी संरक्षतासे भी अलग हुए और दिलसिंहकी सम्मतिसे लखपतसिंहको कैथलके भयानक युद्धमे भेजदिया। वहांके कट्टर जमीन्दारोंने उसे मार डाला। पर जहां तक जाना जा सका है, रणजीतसिंहके सङ्केतसे ही उन्होंने ऐसा किया था। रणजीतसिंहकी माताके विषयमें भी लोगोंके विचार अच्छे न थे और दीवान लखपतसिंहके अतिरिक्त और लोगोंसे भी उसका अनुचित सम्बन्ध बताया जाता था। जब रणजीतसिंहको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने उसे भी मार डाला।

स्वातन्त्र्यप्राप्तिका यत्न ।

'सदाकुँअर' इस नवयुवक सरदारके लिये एक कांटेकी नाईं थी और उसकी 'संरक्षता'से स्वतन्त्र होना कुछ काम रखता था। रणजीतसिंहमें इतनी शक्ति न थी, कि उसके दासत्वसे मुक्त होनेका यत्न करें। पहले वर्णन हो चुका है, कि सदाकुँअरने रणजीतसिंहको शिक्षासे वञ्चित रक्खा था और उनको दुर्व्यसनोंकी ओर झुकाती थी। उसका अभीष्ट यह था, कि रणजीतसिंह इन नीच कर्म्मोंमें डूब कर प्रधान सरदारीके पदके अयोग्य हो जावें। किन्तु रणजीतसिंहके विचार ऐसे भद्दे न थे, कि वे व्यसनके पञ्जेमें पड़कर जीवनके सत्कर्म्मोंसे वञ्चित हो जाते। साथ ही रणजीतसिंहका स्वास्थ्य भी इतना उत्तम था, कि अनेक वर्षों तक इन कठिनाइयोंकी चोट सरलता पूर्वक सहता रहा। इसी बीचमें "शाहजमा" काबुलकी राजगद्दी पर आसीन हुआ और वह अपने पितामह अहमदशाहके विजय किये हुए पञ्जाब देशके प्रदेशोंको अपने राज्यमण्डलके अन्तरगत लानेका विचार करने लगा।

सन् १७९५से १७९७ ई०के बीचमें उसने पञ्जाब देश पर लगातार आक्रमण किये। सिक्खोंमें उसका सामना करनेकी सामर्थ्य न थी। पहले आक्रमणमें वह केवल झेलम तक पहुंचा और पुनः लौट गया, किन्तु दूसरे आक्रमणमें उसे अधिकतर सफलता प्राप्त हुई, और फिर सन् १७९७ ई० में वह बिना रोकटोकके

लाहौरका मालिक बन बैठा। किन्तु कुछ मास तक वहां निवास करने पर उसे जान पड़ा, कि इस प्रदेशका कोई पक्का प्रबन्ध उससे नहीं हो सकता। आक्रमणके समय जिन सरदारोंके इलाके और जागीरें 'शाहजमा' के रास्तेमें थीं, वहांके सरदार उठ खड़े हुए। रणजीतसिंह भी सतलजके पार चले गये और वहांके इलाकोंमें लूट-मार करने लगे। कतिपय सिक्ख-सरदारोंने अफगान-अधिपतिके साथ मैत्रीकी बातचीतकी थी। रणजीतसिंहने भी मित्रता प्रकट करनेके लिये अपने एक विश्वास पात्र सेवकको बादशाहकी सेवामें भेजा था। इसके उपरान्त 'शाहजमा' अफगानिस्तान पर ईरानियोंके आक्रमणका समाचार सुन अत्यन्त आतुरताके साथ काबुलकी ओर चल पड़ा। झेलम नदीमें उस समय बाढ़ आयी थी। उसको पार करते समय बादशाहकी १२ तोपें उसमें डूब गयीं। शाहजमाने रणजीतसिंहसे कहा, कि यदि तुम डूबी हुई तोपें निकलवा कर पेशावर भिजवा दोगे, तो तुम्हें लाहौरका नगर, उसके आसपासके इलाके और राजाकी उपाधि प्रदानकी जायगी। रणजीतसिंहने आठ तोपे निकलवा कर पेशावर भेजदीं। शाहजमाने अपना वचन पूरा किया और लाहौरके सूबेकी सनद भेज दी। किन्तु यह केवल नियम-पालन था। वास्तवमे रणजीतसिंहको लाहौर पर अपनी वीरता और तलवारके बलसे अधिकार जमाना पड़ा।

रणजीतसिंहका लाहौरपर प्रभुत्व।

लाहौर-नगर प्राचीनकालसे प्रसिद्ध तथा समृद्धिशाली है और सिक्ख-सरदारोंका इसपर बराबर दांत रहता था। जब अहमदशाह अब्दाली लाहौरको अपने नायबके सपुर्द करके चला गया, तब तीन सिक्ख-सरदारोंने उसपर अधिकार जमानेका एका किया। सन् १७६४ ई० में एकदिन अत्यन्त अंधेरी रातके समय दो भङ्गी-सरदार लहनासिंह और गूजरसिंह, एकाएक नगरमे घुस पड़े और लाहौरके गवर्नरको नाच देखते समय पकड़ कर लाहौर पर अधिकार जमा लिया। सरदार शोभासिंह कन्हैया, बहुत देर बाद पहुंचा, किन्तु परामर्शानुसार उसको नगरका तीसरा भाग दिया गया। बस इस समयसे नगरके तीन शासक बन गये, किन्तु उनकी सन्तानें निरी मूर्ख निकलीं। जिस समय रणजीतसिंहको शाहजमासे लाहौरकी सूबेदारी मिली, उस समय लाहौरके शासक (हाकिम) चेतसिंह, मोहरसिंह और साहबसिंह थे। इनमेंसे साहबसिंह किञ्चित लायक था, पर शेष दोनों परले दर्जेके विषयी और मद्यप होनेके कारण लगभग उन्मत्तके थे। अवसर पाकर सदाकुंअरने भी रणजीतसिंहको सहायता दी। वे बहुतसे सिपाही लेकर लाहौर पर चढ़ गये। साहबसिंह वहां मौजूद न था। नगरके फाटक, चेतसिंहके कारिन्दे मुहम्मदआशिक़ और मीरसादीने खोल दिये, जो पूर्वोक्त सरदारोंसे अप्रसन्न थे। मोहरसिंह और चेतसिंह भाग निकले।

प्रारम्भिक युद्ध ।

रणजीतसिंह जुलाई सन् १७९८ ई० में लाहौरके अधिकारी हुए। इस समय उनकी अवस्था केवल २० वर्षकी थी और उनको अफगान-बादशाहसे 'राजा' की उपाधि भी मिल चुकी थी। इससे उनकी धाक बंध गयी और सिक्ख-सरदारोंके कान खड़े हो गये। विशेष कर भङ्गी-सरदारोंने अपना राज-सिंहासन छुड़ाने और रणजीतसिंहसे खेत लेनेकी ठहरायी और दूसरे ही वर्षमें नवयुवक राजाका सामना करनेके लिये सिक्ख-सरदारोंका एक बलवान दल बन गया। इनमें अधिकतर प्रसिद्ध सरदार जस्सासिंह रामगड़िया, साहबसिंह और गुलाब-सिह आदि भङ्गी-सरदार थे। इन लोंगोने सलाहकी, कि रणजीत-सिंहको 'भसइन'में भेंट करनेके बहानेसे बुलाकर मार डाला जाय। किन्तु वे बुद्धिमान और चतुर थे, कि उनके षड़यन्त्रमें न फँसे। जब भेंट करने गये तो अपने साथ इतने सिपाही ले गये, कि पूर्व्वोक्त सरदारोंको उनके मारनेका साहस ही न हुआ। दो मास तक विवाद, भोज, मृगया (शिकार) तथा छोटी छोटी लड़ाइयोंके उपरान्त उनकी सेना छिन्न-भिन्न होगयी और रणजीतसिंह लाहौरमे लौट आये। मानो शत्रुओने भी उनका लोहा मान लिया और वे बिना किसी भयके राज्य करने लगे।

इस समय पञ्जाबके भिन्न भिन्न प्रान्तों और जिलोंपर मुस-ल्मान-सरदार और नव्वाब अधिकारी थे। यद्यपि मुगल और

फगान साम्राज्यका सूर्य्य मध्यानसे ढुलककर अस्त होनेके नेकट था, किन्तु फिर भी उन लोगोंकी छायाके तले मुसलमानों-को बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी और सिक्ख-सरदारोंने मुस-मानोंका नाकमें दम कर रक्खा था। इस समय 'कसूर' नगर प्रसिद्ध नव्वाव 'नजमुद्दीन' का मुख्य वास-स्थान था।

कसूरी मुसल्मानोंने कई वार लाहौर तक सारा इलाका लूटा और नव्वाव स्वयम् रणजीतसिंहके विरुद्ध एकाकरनेका दोषी ठहरा! इस कारण रणजीतसिंह उसको शिक्षा देना उचित समझते थे। निदान उसपर चढ़ाईकी गयी। नव्वावको हार मानकर इस नवयुवक राजाकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और यह वात निश्चय होगयी, कि कुतुबुद्दीन(नव्वावकाभाई) अवसर आने पर रणजीतसिंहकी सहायता करनेके लिये जाया करे और उसकी रियासत रणजीतसिंहकी करद वनी रहे।

यह घटना सन् १८०१–०२ ई०की है। इसी वर्ष महाराजा रण-जीतसिंह, गुरु रामदासके तालावमें स्नान करने गये और वही सरदार फतहसिंह अहलूवालियासे भेंट होगयी। साथ ही दोनोंकी मैत्री हुई और दोनों धर्म्मके भाई वन गये, तथा नियमानुसार दोनोंने पगड़ियां अदल–वदल करलीं।

अभी भङ्गी-सरदारोंने अपनी कुटिलता त्यागी न थी, पर रणजीतसिंह भी अचेत न थे। उन्होंने अमृतसरमें, जो भङ्गियोंका मुख्यस्थान था, कहला भेजा, कि सन् १७६४ ई०मे लाहौरपर अधि-कार करनेके समय सिक्ख-सरदारोंने 'जमजम' नामक तोपको मेरे

पितामह 'चरित्रसिंहका' भाग निश्चित किया था, अतः उसपर मेरा स्वत्व है। आपलोगोंके लिये उत्तम होगा, कि उसे शीघ्र मेरे पास भेज दें। किन्तु भङ्गियोंने उनकी बात सुनी-अनसुनी करके टाल दी। यह देख रणजीतसिंहने अमृतसरपर चढ़ाई करदी और भङ्गी-सरदारोंको पराजित करके, उन्हें रामगढ़िया सरदारोंके शरणागत होनेपर वाध्य किया। अमृतसरपर भङ्गी और रामगढ़िया, दोनों सरदारोंका एक साथ अधिकार था। रणजीतसिंहने भङ्गी-सरदारोंके कुल इलाकोंपर अधिकार कर लिया।

इस प्रभावशाली युद्धसे रणजीतसिंहका पञ्जावकी आर्थिक तथा धार्म्मिक, दोनों राजधानियों पर अधिकार होगया। अव उनको अपने शत्रुओंकी शत्रुताका वैसा डर न था, क्योंकि 'कन्हैया मिसिल' उनके हाथमें थी और रामगढ़िया सरदार जस्सासिंह वूढ़ा तथा निर्वल था। रणजीतसिंह जानते थे, कि थोड़े ही दिनोंमें इसकी रियासत भी मेरे अधिकारमें आजायगी। जव पूर्वोक्त सरदार मरा, तो उसका पुत्र वा उत्तराधिकारी जोधासिंह हमारे चरितनायकका अनुचर वन गया। रणजीसिंह इस सरल स्वभाव और वीर सरदारके इलाकोंसे, जो उनसे वैरभाव न रखता था, उद्दण्ड कार्य्य न करना चाहते थे। इस सरदारने रणजीतसिंहसे सर्व्वकालीन मैत्री रखनेका गङ्गाजल उठा लिया था और रणजीतसिंह इसकी सव प्रकारसे सहायता करते रहे। उन्होंने जोधासिंहके दुर्ग गोविन्दगढ़की, जो अमृतसरमें था, नये सिरेसे मरम्मत करवा दी। यह सरदार रणजीतसिंहके साथ

वहुतसी लड़ाइयोंमें गया था। जव जोधासिंह सन् १८१६ ई० में मर गया, तो उसके उत्तराधिकारियोंमें झगड़ा उत्पन्न हुआ। यह अवसर देख रणजीतसिंहने गोविन्दगढ़के किले पर अधिकार कर लिया, जिसके साथ ही रामगढ़ियोंके लगभग सौ छोटे छोटे दुर्ग, जो अमृतसर, जालन्धर और गुरदासपुरमें थे, सबके सव रणजीतसिंहके राज्यमे मिल गये। इस कुलके सरदारोंको महाराजकी ओरसे बड़ी वड़ी जागीरें और फौजमें बड़े वड़े पद मिले।

'नकिया' सरदारोंकी जागीर सन् १८१० ई० मे नाश हुई। पाठकोंको स्मरण होगा, कि रणजीतसिंहने इस कुलकी राजकुँअर नाम्नी एक कन्यासे विवाह किया था, जिससे उनका एकलौता पुत्र खड्गसिंह उत्पन्न हुआ था। किन्तु इस सम्बन्धसे रानी राजकुँअरको कुछ लाभ न हुआ। जव कान्हसिंह इस जागीरकी गद्दीपर था, रणजीतसिंहने उसको अपने दरवारमें बुलवा भेजा, किन्तु वह जानता था, कि यदि मैं लाहौरमें चला गया, तो वहांसे फिरकर आना नसीब न होगा। इसलिये उसने कहला भेजा, कि महाराज बहादुर मुझे इस प्रतिष्ठासे क्षमा करें। राजा साहवने इस वातसे चिढ़कर उसकी जागीरके कुल इलाके, जो कसूर, चूनिया और 'गोगिरह' में थे, अपने राज्यमें मिला लिये।

कन्हैया-सरदारोंकी जागीर भी अन्तमें पञ्जाव-केशरीके अधिकारमें आगयी। इसका अधिकार माई सदाकुँअरके हाथमें था। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं, कि—यह स्त्री चतुर और दृढ़प्रतिज्ञ थी, किन्तु महाराजा वहादुरके आगे इसकी भी न चली।

सदाकुँअरने रणजीतसिंहके सामने शेरसिंहको उपस्थित करके कहा, कि यह 'महताव कुंअर' (उसकी वेटी, रणजीतसिंहकी भार्या) के उदरसे उत्पन्न हुआ है। रणजीतसिंहने उसको वुद्धिमत्ताके विचारसे अपना पुत्र मान लिया। सदाकुँअरने शेरसिंहको अपना पोष्य पुत्र वना लिया था और रणजीतसिंहने हजाराके मुहिमकी कमान देकर उसे रवाना किया था, जहां पर उसने कुछ वीरताका भी परिचय दिया था।

जव वह अपने मुहिमसे लौटा, तो रणजीतसिंहने सदाकुँअरको कहला भेजा, कि अव तुम सांसारिक मोह-ममता छोड़कर अपनी जागीर अपने दौहित्रको देदो। इस समय सदाकुँअर 'शाहदरा' की छावनी मे थी। उसने इस अवसर पर इस प्रस्तावको विना कुछ कहे सुने स्वीकारकरलिया, किन्तु फिरअपने मुख्य स्थान वटालामें जाकर अङ्गरेजोसे चिट्ठी-पत्री प्रारम्भकी और लिखा, कि—आपलोग मुझे अपनी शरणमे सतलज पार रहनेकी आज्ञा दे। महाराजा रणजीतसिंहने यह समाचार सुन सदाकुँअरको अपने दर्वारमे वुलाकर धमकाया और कहा, कि—इसीमे तुम्हारी कुशल है, कि तुम अव संसारके वैभवको छोड़ दो। सदाकुँअर एक वन्द पालकीमें वैठकर भागी, पर महाराजकी फौजने उसे पकड़ लिया। अन्तमे महाराजने उसे एक किलेमे नजरवन्द करदिया और उसका देश अपने राज्यमे मिला लिया। 'अकालगढ़' और 'यकशरी' के किलोंके जीतनेमें वड़ी कठिनता पड़ी। वटाला शेरसिंहको जागीरकी भांति दिया गया।

वीर-केशरी सरदार 'हरिसिंह नलवा' का युद्ध-कौशल।

रणजीतसिंहका मुल्तान-विजय और उनके सेनापति हरिसिंहकी वीरता।

परम उद्यमी महाराजा रणजीतसिंहके हृदयमें अब बहुत दिनोंकी पुष्ट हुई मुल्तान–विजयकी आकांक्षा अत्यन्त प्रबल हो उठी। इसीसे उन्होंने अपनी सेनासे विशेष विशेष साहसी वीरोंको चुनकर मुल्तानको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख वहांका सुल्तान नव्वाब मुजफ्फरखां बहुत घबराया और उसने इस सहसा आ पड़नेवाली आपत्तिको बीचमें ही रोकनेके लिये अपनी असीम सेनाको मुकाबिलेके लिये भेज दिया। नव्वाबी सेनाको, अपनी गतिमें बाधा डालनेके लिये आते देखकर महाराजा बहादुरको सेना एकदम आगबबूला होगयी और दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओरके वीरोंने ही अपने अपने प्राणोंकी ममताको छोड़ दिया। अपरिमित बलशाली और रणविजयी रणजीतसिंहकी सेनाके आगे मुजफ्फरखांकी सेना कबतक टिक सकती थी? मुजफ्फरखांके बारम्बार उत्साह दिलानेपर भी नव्वाबी सेनाके पांव उखड़ गये और वह अस्त्र-शस्त्रोंको फेंक, बिना लगामके घोड़ेकी भांति अँधाधुन्ध भाग चली। यह देख मुजफ्फरखांके भी होश उड़ गये और वह प्राण-भयसे भीत होकर फौजके पीछे पीछे भाग निकला–रणजीतसिंहने उसे पकड़नेके लिये धावा किया। अपने पीछे महाराजा-

को आते देख और रचनेके समस्त मार्गोंको अवरुद्ध पा, हारकर नव्वाब मुजफ्फरखांने महाराजाको शरण लेली। साथही बहुतसी अमूल्य भेंटे भी मँगवाकर नजरकीं। नव्वाबकी इस प्राण-भिक्षा और नम्रतासे महाराजा बहादुरका हृदय दयासे भर गया ; अतएव वे अपनी फौजके साथ लाहोर लौट आये।

कुछ दिन चुप रहनेके बाद युद्ध-व्यवसायी महाराजा रण-जीतसिंहने मुल्तान-शहरपर अधिकार कर लेना अपना एक मुख्य ध्येय समझा, इसीसे एकबार नव्वाबको क्षमाकर देने पर भी वे स्थिर होकर न बैठ सके और फिर सन् १८१० ई०में अपने वीर सिपाहियोंके साथ मुल्तानपर चढ़ाई कर दी। पर इस बार नव्वाब नहीं लड़ा, वरन् एक लाख अस्सी हजार रुपया भेंट देकर उसने महाराजाको सन्तुष्टकर दिया।

इसी बीचमें झंगके सुलतान अहमदखां और महाराजामें अनबन हो गयी, अहमदखां एक असम साहसी वीर था। उसकी नसनसमें मुसलमानी खून भरा हुआ था। इसीसे उसने महा-राजा बहादुरकी असीम शक्तिकी कुछ भी परवाह न कर उनसे युद्ध ठान दिया। युद्ध तो ठान दिया और अपने वीरत्वका परिचय भी भलीप्रकार दिया, पर महाराजाकी विजयिनी, रणबांकुरी सेनासे लोहा लेना कोई आसान काम नहीं था, इसीसे बातकी बातमें उसके अनेकों सिपाही समरशायी होगये। यह देख वह रणभूमिसे भागकर मुल्तान पहुँचा और मुजफ्फर-खांकी शरण ली। मुजफ्फरने शरणागत बन्धुकी रक्षाकी। इससे

रणजीतसिंह मुजफ्फरसे फिर रुष्ट होगये और उन्होंने खूब धूमधामके साथ फिर मुल्तानपर धावा बोल दिया। इतिहासमें यह लड़ाई ४थे युद्धके नामसे उल्लिखित है। इस चढ़ाईका प्रधान सेनापति "हरिसिंह नलवा"* था और महाराजा बहादुरके प्रधान प्रधान अमात्यगणभी हरिसिंहके साथ थे। सेनापतिने मुल्तान जाते हुए रास्तेमें अनेक उमरावों और जमींदारोंसे तरह तरहकी भेंटें प्राप्त कीं, अनन्तर वे सीधे मुल्तान जा पहुँचे। इस बार मुजफ्फरखां समस्त समाचार सुनकर किसी प्रकारकी खुशामद-बरामद न कर, निःसंकोच भावसे युद्धके लिये

* पाठकोंने इस पुस्तकमें सरदार चढ़तसिंह और सरदार महासिंहका नाम कई स्थानों पर पढ़ा होगा, सेनापति हरिसिंहके पिता सरदार गुरुदयालसिंह इन्होंके पास रहा करते थे। वे जातिके खत्री थे। गुरुदयालसिंहने अनेकों बार बड़ी बड़ी लड़ाइयोंमें विजय प्राप्त कर अपने मालिकोंका यश बढ़ाया था। सन् १७८१ ई०में हरिसिंहका जन्म हुआ। कहते हैं, हरिसिंहको ८ वर्षकी अवस्थामें ही उनके पिताका परलोक-वास हो गया था। उस समय महाराजा रणजीतसिंह गुजरानवालाका प्रबन्ध करते थे। महाराजा बहादुर इस होनहार बालकको देखकर भलीभांति समझ गये, कि—यह बालक एक दिन बड़े बड़े वीरोंके दांत खट्टे करेगा। अतएव तभीसे वे उसे अपने पास रखने लगे थे। हरिसिंहने वीरोचित शिक्षा प्राप्त कर सबसे प्रथम १८०७में 'कसूर' नामक नगर फतह किया,—इससे रणजीतसिंह बड़े प्रसन्न हुए और तभीसे उन्होंने हरिसिंहको अपना सेनापति बना लिया।

—लेखक।
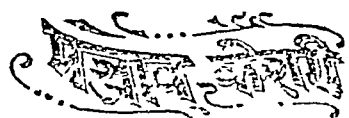
प्रस्तुत होगया। खूब युद्ध हुआ। दोनों ओरकी सेनाओंने जी खोलकर युद्ध किया; एक वार तो ऐसा हो गया, कि—नव्वावकी सेनासे पार पाना रणजीतसिंहकी सेनाके लिये वड़ा कठिन होगया। इससे सेनापति हरिसिंह मनमें अति क्रुद्ध हुए और असीम उत्साहके साथ अपनी सुदक्ष सेनाकी परिचालना करने लगे। इससे समस्त सेनामें एक अभूतपूर्व वल आगया और वातकी वातमें नव्वावी सेनाके पैर उखाड़ दिये गये। शत्रु-सेना भाग चली। हरिसिंह 'वाह गुरूकी फतह' का धार्म्मिक शब्द उच्चारण करते हुए मुल्तानके किलेमें घुस गये। नगर अधिकारमें आ गया। हरिसिंहने अपनी फौजको नगर लूटनेकी भी आज्ञा दे दी। नगरमें वहुत देरतक लूट-मार होती रही, सिपाही मालामाल हो गये।

महाराजा रणजीतसिंहकी विजय हुई। अव केवल शाही महल अधिकारमें आना वाकी रह गया था।

उसी समय एक अघटन घटनाका सूत्रपात हुआ। अर्थात् महाराजा वहादुरके प्रधान दीवान भवानीदासको लोभके भूतने आ दवाया एवं मुल्तान हाथमें आकर फिर निकल गया! यह घटना इस प्रकार है, कि जिस समय नव्वाव मुजफ्फरखांने देखा, कि—'किला तो हाथसे गया, अव सम्भवतः प्राणों पर भी शीघ्र ही संकट आवेगा, क्या करूँ ?' उस समय उसे सहसा एक उपाय सूझ पड़ा, कि दीवान भवानीदासको लोभका शिकार वनाना चाहिये। उपाय सफल हुआ। दीवान साहव नव्वावकी इस

चिट्ठीको पाकर,—"दीवान बहादुर! मैं महाराजा बहादुरका पूरी तौरसे हुक्मबरदार हूं, तो भी न मालूम क्यों महाराजा साहब मेरे प्राण और धनके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं, अब मैंने आपकी शरण ली है, यदि आपकी कृपासे मुझे प्राण-भिक्षा मिल जाय एवं महाराजा बहादुरकी सेना किला छोड़कर लाहौर लौट जाय, तो मैं जीवन भर आपका उपकृत रहूंगा। इसके सिवा दशहजार रुपया भेंट स्वरूप आपकी सेवामें भेजता हूं। यदि आप मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लेंगे, तो आपको लाभके सिवा हानि तनिक भी न होगी, क्योंकि, एक तो मैं आपका मरण पर्यन्त उपकृत रहूंगा, दूसरे घरमें धन आता है। यदि आप मेरे इस प्रस्तावमें सहमत हो गये, तो आपको पीछेसे भी सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की जायगी"—पाप पङ्कमें फँस गये एवं सेनापति हरिसिंहको किले परसे सेना हटानेका हुक्म दे दिया।

महाराजा रणजीतसिंहके 'मर्जीदान' दीवान भवानीदासकी इस अद्भुत आज्ञाको सुनकर हरिसिंह एकदम आश्चर्य्यमें आ गये, पर करते ही क्या? दीवानकी आज्ञा थी!—युद्ध स्थगित कर दिया गया। सेना और सेनापति युद्धभूमि छोड़ लाहौरकी ओर लौट पड़े।

जिस समय सरदार हरिसिंह सेना सहित लाहौरकी सीमा-में पदार्पण करनेवाले थे, उसी समय महाराजा बहादुरका भेजा मुल्तानकी छावनीके पतेका, उन्हें एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, कि—'मुल्तानका किला ले लेनेके लिये बधाई, अब नगर पर भी शीघ्र अधिकार करलो।'

यह कैसा इन्द्रजाल! एक दम दो आज्ञाएँ कैसी? सेना और सेनापति दोनोंही अचम्भित हो गये, तथापि इस आश्चर्य्य-पूर्ण दुर्भेद्य पहेलीको समझनेके लिये पीछे न लौट सबके सब लाहौर चले गये एवं महाराजाके सामने जाकर समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

दीवान भवानीदासकी इस नमकहरामी और विश्वास-घातकता पर महाराजा बहादुर अत्यन्त क्रोधित हुए, यहां तक कि—अपना प्रेम-पात्र होने पर भी कर्त्तव्यानुरोध वश उसे जीवन भरके लिये कैद करदिया एवं राजकुमार खड्गसिंह, सेना-पति हरिसिंह तथा अनेक शूर सामन्तोंके साथ अपनी अतुल सेनाको पुनः मुल्तान जीतनेके लिये भेज दिया।

इस बार सिक्ख-सेनाके समस्त वीर नव्वाब मुजफ्फरखां पर अतिशय क्रुद्ध थे। अतः जाते ही किले पर धावा कर दिया। उधर मरणकाल उपस्थित देख नव्वावने भी प्राणके मोहको त्याग घोर युद्ध किया। इतिहासोंमें उन्नीसवीं शताब्दिके इस युद्धका खूब जोरदार वर्णन है। सारांश, कि—मुल्तानकी नव्वावी सेनाके जीवन-भय त्याग कर लड़ने पर भी शूर-श्रेष्ठ सिक्ख वीरोंने वातकी वातमें उन्हें धराशायी कर दिया, तथापि किलेके भीतरके मुसलमान सैनिक मोर्चों पर डटे रहे। इसी समय सहसा अकाली साधूसिंह नामका सामन्त 'वाह गुरुकी फतह'का धार्म्मिक शब्द उच्चारण करता हुआ किलेकी दीवार पर चढ़ गया और कूद कर किलेका दर्वाजा

भीतरसे खोल दिया ! हरिसिंह सेना सहित गढ़में घुस गये और वहांके सैनिकोंको मार कर किले पर पञ्जाब-केशरीका झण्डा गाड़दिया ।

महाराजा बहादुरकी विजय हुई। सेनाने मनमाने ढङ्गसे पुनः शहर लूटा। नगर पर अपना अधिकार जमा एवं मुजफ्फर-खांको पकड़ कर हरिसिंह लाहौर लौट आये। महाराजा बहादुरने सरदार हरिसिंह और अकाली साधूसिंहको अनेक प्रकारके पुरष्कार देकर यथेष्टरूपसे सम्मानित किया।
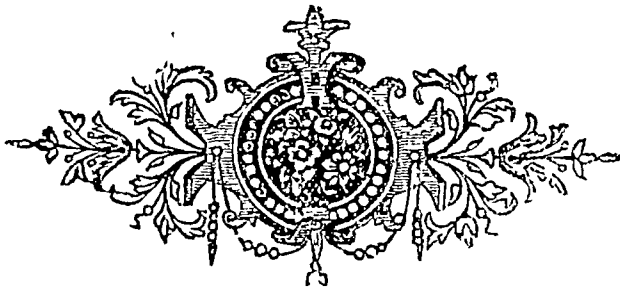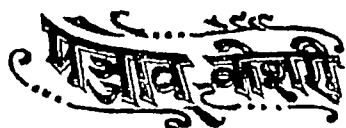
काश्मीर-विजय ।

मुल्तान-विजय हुए अभी सालभर भी न बीता था, कि महाराजा रणजीतसिंहकी दृष्टि भारतके भू-स्वर्ग काश्मीर-राज्यपर पड़ी। काश्मीरको जीत लेनेकी लालसा भी यद्यपि महाराजाके हृदयमें नूतन नहीं पुरातन थी, पर उस ओर उनका विशेष ध्यान न था। आजकल उन्हें निश्चिन्तिता थी। निश्चिन्तितामें नवीन भावनाओका उद्भाव हुआ ही करता है। तदनुसार महाराजके हृदयमें उपर्युक्त भावनाने जोर दिया और काश्मीरपर चढ़ाई करनेकी तैय्यारी होने लगी। ६ फरवरी १८१६ का दिन था, सहसा काश्मीरके नव्वाबका वीरवर नामक प्रधान अमात्य उसके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर लाहौर आया और महाराजाकी शूर-सामन्तोंसे भरी सभामें जाकर उसने दुहाई दी, कि—धर्म्मावतार महाराजा रणजीतसिंह मेरी रक्षा करें।"

महाराजा वहादुरने उसे अभय देते हुए समस्त वृत्तान्त पूछा। पूछनेपर मालूम हुआ, कि—वहांका नव्वाव जव्वारखां प्रजाको मनमाने और व्यर्थ कष्ट देता है; यहांतक, कि काश्मीरकी समस्त प्रजा उसके व्यवहारोंसे तंग आ गयी है और चाहती है, कि—ऐसे अत्याचारी सुल्तानका शीघ्र पतन हो। नव्वाव जव्वारखांके कुछ ऐसे मुँहचढ़े लोग हैं, जिनकी वातोंमें आकर वह काश्मीरके प्रतिष्ठित जागीरदारों और रईसोंकी इज़्ज़त वातकीवातमें मट्टीमें मिला देता है। वीरवर भी उन्हीं लोगों द्वारा

की हुई शिकायतसे बेइज़्ज़त किया गया ; यहां तक, कि—जब्बारने उसे देश-निकालनेकी आज्ञा दे दी है ।

महाराजा बहादुरने अपनी मनोगत आकांक्षाको पूर्ण करनेके लिये यही समय उपयुक्त समझा और इस न्यायसे, कि—ईश्वर-की रची सृष्टिको किसी अन्यायीके अन्यायसे बचाना प्रत्येक सामर्थ्यवान् और शक्तिशाली पुरुषका कर्त्तव्य है, उन्होने ६ फरवरी १८१६ ई० को अपनी शत्रु-विजयिनी सेना काश्मीर-विजयके लिये भेज दी। इस सेनाके प्रधान सेनापति राजकुमार खड्गसिंह और सरदार हरिसिंह थे। इसके अलावा कुछ सेना मिश्र दीवानचन्दके अधिकारमे देकर उन्हें भी सम्भरके मार्गसे काश्मीर भेज दिया। इन सबमें प्रधान सेना-नायक राजकुमार खड्गसिंह ही थे।

इस प्रकार महाराजा बहादुरका यह बाह्य-बल वर्षा-ऋतुके घनघोर मेघोंकी भांति कुछ हो दिनों बाद काश्मीर-प्रदेशमें जा पहुंचा ।

उधर काश्मीरके नव्वाब जब्बारखांको महाराजा रणजीसिंहकी इस चढ़ाईका समाचार पहलेही मिल चुका था। अतएव वह भी युद्धके सरोसामानसे शीघ्रही लैस होगया।

रणजीतसिंहको सेनाके काश्मीरकी सीमामें पहुंचनेके पहले ही नव्वाबकी सेनाने उसे बीचमें ही रोकना चाहा। अतः दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया। सबेरेसे सांझ तक खूब मार-काट होती रही, पठान-सेनाने जी तोड़कर सिक्ख सेनाका-सामना किया ; किन्तु सायङ्कालके ७ बजे रणजीतसिंहकी सिक्ख-

सेना न मालूम किस नवीन बलसे बलीयान होकर पठान-सेना पर यमदूतोंकी भांति टूट पड़ी ! बातकी बातमें मुसल्मानी सेनाके पांव उखड़ गये और वह खेत छोड़कर भाग खड़ी हुई। यह देख सिक्ख-सेनाका उत्साह और भी बढ़ गया एवं उसने पठान-सेनाका समस्त सरोसामान लूट लिया।

इस प्रकार सिक्ख-सेना अपने कण्टकाकीर्ण पथको साफकर आगे बढ़ी। काश्मीर-प्रदेश पर्व्वतमय है। उसे शीघ्र ही उत्तीर्णकर नव्वाबी सल्तनत काश्मीरमें पहुंचना बड़ी टेढ़ी खीर था। अतएव रणजीतसिंहकी सेना बीच बीचमें पड़ाव डालती हुई १६ जून १८१६ ई० को पर्व्वतोंसे उतर कर सब्ज मैदानमें पहुंची तो उसे वहांपर कुछ पठान सैनिक देख पड़े।

उपर्युक्त पठान-सैनिक काश्मीरकी सीमाके युद्धमें हारकर भागे हुए थे। यहां पर आकर उन लोगोंने पुनः सेनाका सङ्गठन करना आरम्भ कर दिया था। उद्देश्य, वही शत्रु-सेनाकी गतिमें बाधा डालना था। अतएव सिक्ख-सेनाको देखते ही पठान-सेनाने एकदम उसपर धावा कर दिया। सिक्खोंने पठानोंकी सेनाको युद्धके लिये उपस्थित देख शीघ्र ही हथियार बांधकर युद्धका डङ्का बजा दिया। मारू बाजोंके बजते ही सिक्ख-सेनाके वीरोंकी भुजाएं युद्धके लिये फड़क उठी।

उधर पठान-सेनाके दो भाग किये गये थे, एक भागको शत्रु-सेनासे मुकाबिला करनेका भार दिया गया गया था और दूसरेको उसकी मददके लिये हर वक्त तैय्यार रहनेकी आज्ञा मिली थी।

अब पठान और सिक्ख-सेनाएं आपसमें भिड़ गयीं। दोनों ओरसे मार काट शुरु हो गयी। इसबार पठान-सेना खूब दिल खोलकर लड़ी। कहते हैं, कि—इस युद्धमें सिक्ख-सेनाके बहुतसे वीर पठानोके हाथसे मारे गये। यह देख खड्गसिंहको बड़ा क्रोध आया और वे वीर हरिसिंहको ललकारकर बोले,—“आज यह कैसी अद्भुत बात है, जो मुट्ठी भर पठान असीम सिक्ख-सेनापर आरम्भसे ही विजय पाते जा रहे हैं, क्या यहांपर सिक्ख जातिके मस्तकपर कलङ्कका टीका लगेगा ?” राजकुमारकी इस श्लेषपूर्ण उक्तिको सुन हरिसिंहने अपने सैनिकोंको खूब बढ़ बढ़कर उत्साह दिलाया ; इससे सिक्ख-सेनामें नवीन बलका सञ्चार हुआ और उसने जोशमें आकर बातकी बातमें पठान सैनिकोंको अपनी बन्दूकोंकी मारसे जमीनपर बिछा दिया।

यह देख पठान सेनाका दूसरा भाग भी अपने साथियोंकी सहायता करनेके लिये सिक्ख-सेनापर टूट पड़ा। फिर घमासान युद्ध होने लगा, रक्तकी नदियां बह निकलीं। पर सिक्ख वीरोंसे मोर्चा लेना, एक अनहोनी सी बात थी, इससे अवशिष्ट पठान सैनिक भी बातकी बातमें जमीनपर पड़े दिखायी दिये।

महाराजा बहादुरकी जीत हुई। उनकी सेना पठान-सैनिकोंको पुनः परास्त कर काश्मीरकी ओर चल पड़ी।

३० जून १८१६ ई०को हमारी यह विजयी, गर्व्वोन्मत्त सिक्ख-सेना काश्मीरके किलेके पास जा पहुँची। किलेमें बहुत थोड़ी सेना थी, अतएव उसे जीतकर नगर लेलेनेमे कुँवर खड्गसिंहको

तनिक भी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ा और उन्होंने गढ़ पर अपना जीतका झण्डा गाड़ दिया।

काश्मीर पर रणजीतसिंहका अधिकार होते देख, उसके समीपवर्त्ती कुछ राजागण रुष्ट हुए और सिक्ख-सरदारोंसे युद्ध करना चाहा, पर मिश्रदीवानचन्द ने उन्हें बीचमें ही धर दबाया जिससे उन्हें अधिक उत्पात करनेकी हिम्मत न पड़ी।

काश्मीरकी प्रजा तो यह चाहती ही थी, कि—किसी तरह अत्याचारी जब्बारखांका शासन दूर हो एवं कोई न्यायनिष्ठ राजा हमारा शासन करे, इसलिये प्रजाने भी अवनत मस्तकसे महाराजा बहादुरका स्वामित्व स्वीकार कर लिया।

अनन्तर कुँवर खड्गसिंह पिताकी आज्ञासे मिश्र दीवानचन्दको राज-प्रतिनिधि बना और काश्मीरका शासन-भार उनके हाथमें सौंपकर सरदार हरिसिंहके साथ लाहौर लौट आये।

इस घटनाके कुछ ही दिनों बाद, काश्मीर-प्रदेशके समीपवर्त्ती द्राइन्दा किलेके सुल्तान पाइन्दाखांने जब सुना, कि—अब काश्मीर नव्वाब जब्बारखांके हाथसे निकलकर पञ्जाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंहके अधिकारमें चला गया है, तो उसे बड़ा दुःख हुआ एवं प्राण-भयसे भागे हुए जब्बारखांको अपने पास बुला, महाराजा बहादुरसे उसका बदला लेनेकी तैय्यारी करने लगा।

धीरे धीरे यह सम्वाद महाराजा रणजीतसिंहके कानों तक पहुंचा। उन्होंने मिश्र दीवानचन्द्रको मददके लिये दीवान

मोतीचन्दको भेज, काश्मीरका शासन दृढ़ कर दिया एवं सरदार हरिसिंहको पाइन्दाखांके दमनके लिये द्राइन्दागढ़ भेज दिया। सरदार हरिसिंहने एक ही धावेमें पाइन्दाखांकी सेनाको तहस नहस कर दिया और मय जब्बारखांके पाइन्दाखांको पकड़ कर महाराजा बहादुरके सामने ला खड़ा किया। इस घटनासे द्राइन्दागढ़में भी पञ्जाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंहका ही राज्य स्थापित होगया।

हमने यहांपर काश्मीरके सिक्ख-कृत विजय सम्बन्धी वृत्तान्तका सारांश इसलिए लिपिबद्ध कर दिया है; जिससे प्रस्तुत पुस्तकके पाठक महाराजा बहादुरकी बढ़ी-चढ़ी वीरताका कुछ अनुमान कर सकें।

विरोधियोंका दमन ।

काश्मीर-विजयके कुछही दिनों बाद पञ्जाव-प्रान्तके हजारा, पेशावर और वक्खरगढ़ आदि स्थानोंको मुसलमान प्रजाने राज-विद्रोह मचाना प्रारम्भ किया एवं धर्म्म-रक्षाकी दुहाई दे, छोटे मोटे स्वार्थपर नव्वावोंने अफगान, यूसुफजई और गाजी आदि जातियोंको महाराजा रणजीतसिंहके विरुद्ध उभारा। जब यह समाचार महाराजाके पास पहुंचा, तब उन्होंने कहीं हरिसिंह, दीवानचन्द, मोतीराम, और कहीं अपने राजकुमारोंको भेजकर उनका दमन कराया। विद्रोहियोंके साथ महाराजा बहादुरका युद्ध एक नहीं, अनेक समयोंपर इस भीषण रूपसे हुआ, कि— इतिहासोंमे उसका वर्णन पढ़नेसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु महाराजा वहादुर पर उस समय विजय-लक्ष्मी पूर्ण रूपसे प्रसन्न थी, अतएव वे जिधर दृष्टि डालते थे, उधर ही उनकी जय होती थी।

इस प्रकार महाराजा रणजीतसिंहका प्रताप-सूर्य्य दिन दिन प्रचण्ड होता गया और उनके तेजसे एकवार समस्त भारतवर्ष चौंधिया गया। यहां तक, कि—उस समयकी अङ्गरेज-सर्कार भी उनके नामसे भय खाती थी।

सतलजके इसपारके इलाके ।

सतलजके इसपारके इलाकोंसे, उन इलाकोंका अभिप्राय है, जो फिरोजपुरसे दिल्ली तक चलेगये हैं। रणजीतसिंहके समयमें इन इलाकोंका बहुतसा भाग सिक्ख-सरदारों, जैसे महाराजा पटियाला, झींद, इत्यादिके और कुछ अङ्गरेजोंके अधिकारमें था। बहुतसा भाग और किसी राज्य या रियासतमें मिला हुआ था। रणजीतसिंह चाहते थे, कि—कुल खालसा-सरदारोंको अपने अधीन कर अपने साम्राज्यको दिल्ली तक पहुंचा दें, किन्तु इस विचारमें उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। इसका यह कारण था, कि—उनको, इन विचारोंके कार्य्यमें परिणत करनेमें अङ्गरेज बाधक हुए। अङ्गरेज-गवर्नमेण्ट और महाबली पञ्जाब-केशरीके बीच इस विषयकी जो सन्धि हुई, उसका वर्णन निश्चित रूपसे मनोरञ्जक होगा।

हम ऊपर कह चुके हैं, कि—महाराजा बहादुरके, किसी राज्यको हस्तगत करनेमें, कोई भूतपूर्व्व सन्धि या परामर्श आदि बाधक न होते थे। जब वे किसी राज्य पर अपनी दृष्टि डालते थे, तो विना किसी बातका विचार किये उसे चट गड़प कर लेते थे। इस दशामें महाराजा रणजीतसिंहका, अङ्ग-रेज-सर्कारसे, सन्धिका सदैव निर्वाह करते रहना, अत्यन्त आ-श्चर्य्यजनक बात थी। पर इसका एक कारण था। वह यह है,

कि महाराजा साहबके हृदयपर अङ्गरेजोंका बल, पौरुष और चातुर्य्य पूर्णरीतिसे खचित होगया था *। प्रायः वे भारत का 'मानचित्र' (नक्शा) देखकर कहा करते थे, कि—एक दिन ऐसा आवेगा, जब समस्त भारतका 'मानचित्र' लाल-रङ्गसे रङ्ग जावेगा† अर्थात् सारा भारत अङ्गरेजोंके हाथमें चला जावेगा ! अङ्गरेज-सर्कार इनके राज्यपर इसलिये हाथ नहीं फैलाती थी, कि महाराजाका स्वतन्त्र रहना उसके लिये उत्तर-पश्चिमके आक्रमण-कारियोंको रोकनेके लिये एक महान् रुकावट थी। और महाराजा साहब इसलिये न बोलते थे, कि वे अङ्गरेज-सर्कारको अपनेसे कम बली नहीं समझते थे। पर तौ भी सिक्खोंका राज्य क्यों नष्ट होगया ? इसका कारण यह है, कि—स्वयं सिक्ख-राज्य ही आपसकी फूट और वैमनस्यके कारण जर्ज्जरित और पतित होगया था, न कि अङ्गरेज-सर्कार उसे अपने हस्तगत कर सकती, या करना चाहती थी।

उन दिनों 'जार्ज टामसन' नामक एक वीर अङ्गरेज उत्तरीय भारतमें अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था और उसको इस कार्य्यमें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी, पर

---

*यहां पर अङ्गरेज-लेखकोंने अपनी जातिका पक्ष लिया है, परन्तु वास्तवमें यह बात न थी। महाराजा बहादुर अपने बलके मुकाबिले किसीको कोई वस्तु न समझते थे। —लेखक।

† हिन्दुस्तानके नक्शेमें अङ्गरेजोंकी अमलदारी लालरंगमें दिखलायी गयी है। —लेखक।

सतलजके इस पारके सिक्ख-सरदारोंने उसको ऐसी कड़ी शिकस्त दी, कि—उसका सब मन्सूबा धूलमें मिल गया। वे सरदार महाराष्ट्र लोगोंसे मिले हुए थे और जब दिल्लीमें मरहठों और अङ्गरेजोंसे युद्ध हुआ, तो वे मरहठोंके सरदार जेनरल 'बूरकीन' की सहायताको आये। अङ्गरेजोंके 'जेनरल लेक' ने ११वीं सेप्टेम्बर सन् १८०३ ई० को उन्हें कठिन रूपसे पराजित किया। इसके उपरान्त सन् १८०४ ई०में भी ये सिक्ख-सरदार अङ्गरेज-गवर्नमेण्टको बहुत दुःख देते रहे और उन्होंने दिल्ली तकके सारे इलाकोंको लूट-पाट कर सत्यानाश कर डाला। सन् १८०४ ई० के दिसम्बर मासकी १८वीं तारीखको 'कर्नल वर्न' ने उनको ऐसा परास्त किया, कि अन्तमें सबको जमुना-पार भाग जाना पड़ा और उनके दो मुखिया, राजा फाग-सिंह झींदवाला और भाई लालसिंह (कैथलका राजा) अङ्गरेजी फौजमें मिल गये और अन्ततक अङ्गरेजोंके सच्चे मित्र बने रहे।

अक्टूबर सन् १८०४ ई०में 'जसवन्तराव होल्कर' दिल्लीके युद्धमें 'जेनरल अकरोली' और 'करनल वर्न'से बेतरह पराजित हुए और इसके दो मास बाद फतहगढ़ और डीगमें मरहठोंने अत्यन्त हानिके साथ 'जेनरल लेक' और 'फ्रेजर'से बड़ी कड़ी शिकश्त खायी। जसवन्तरावकी कुल फौज तितरबितर हो गयी और जब उनको सेंधियासे सहायता न मिली, तो वे पटियालामें इसी अभिप्रायसे आये, पर जब उन्होंने भी सहायता न दी, तो अन्य खालसा-सरदारोंने भी उनकी मदद करनेसे मुँह मोड़ लिया।

सन् १८०५ ई०में 'लार्ड लेक' होल्करको जीतनेके निमित्त पुनः युद्धक्षेत्रमें उतरे और होल्कर अमृतसरमें महाराजा रणजीतसिंहसे सहायता लेनेके लिये आये, किन्तु फतहसिंह अहलूवालिया और झींदके राजाने रणजीतसिंहको ऐसा करनेसे मना किया और कहा, कि—यदि होल्करको सहायता दोगे, तो अङ्गरेज-बहादुरसे शत्रुता करनी पड़ेगी। लार्ड लेकने व्यासातक होल्करका पीछा किया और अन्तमें उससे सन्धि करली। इसी समय रणजीतसिंह और अहलूवालियोंसे भी अङ्गरेजोंकी सन्धि होगयी। इस सन्धिके अनुसार यह तय पाया, कि होल्करको अमृतसरसे निकाल दो तथा उनके साथ फिर किसी प्रकारका सम्बन्ध न रक्खो और न अर्थ तथा फौजसे ही कभी सहायता करो। इसपर अङ्गरेजोंने वादा किया, कि जबतक रणजीतसिंह अङ्गरेज-बहादुरके शत्रुओसे न मिलेंगे और न उनके विरुद्ध कोई युद्ध करेंगे, तबतक उनके राज्यमें अङ्गरेजी फौज न जायगी और न उनके अधिकार पर हस्तक्षेप ही करेगी।

इस सन्धि-पत्रके अनुसार होल्कर पञ्जाबसे निकाले गये और रणजीतसिंहको सतलजके उत्तर विजय करते रहनेमें कोई रुकावट न रही। पर सतलजके इस पारकी रियासतोंके निमित्त कोई सन्धि न हुई। सन् १८०६ ई० की ग्रीष्म ऋतुमें फुलकिया सरदारोंके बीच झगड़ा उत्पन्न होगया, जिससे महाराजा रणजीतसिंहको उनके इलाकोंपर आक्रमण करनेका अच्छा मौका मिल गया।

सिक्खोंकी रियासतों और दिल्लीके वीचके इलाकोंकी दशा, जो अङ्गरेजोंने सन् १८०३ ई० में प्राप्त किये थे, अत्यन्त ही शोचनीय थी। पर सिक्ख-सरदारोंके ही उत्पातसे, रणजीतसिंहके राज्यमें भी कुप्रवन्ध और अवनतिने घर कर लिया था। अन्तको रणजीतसिंहके चाचा भागसिंह झींदवालेने उनको, अपने और महाराजा पटियालाके वीच झगड़ेका निपटारा करनेके लिये बुला भेजा। रणजीतसिंह जुलाई सन् १८०६ ई० में वहुतसी फौज लेकर सतलज पार उतर गये। महाराजाकी यह कार्रवाई अङ्गरेजोंके वड़े मानसिक कष्टका कारण हुई और उन्होंने अपने दुर्ग कर्नालको खूब दृढ़ कर लिया। किन्तु रणजीतिसिंहने लुधियानेके जिलेको ले लेना ही उचित समझा और अङ्गरेजी राज्यकी ओर ध्यान न दिया। लुधियानेमें मुसल्मानोंका एक प्राचीन कुल शासन करता था, और जिस समयका वर्णन किया जा रहा है, उस समय दो विधवा औरतें राजगद्दी पर आसीन थीं। रणजीतसिंहने उनके मालमते और जागीरपर अधिकार कर लिया। इस कार्य्यमें यद्यपि महाराजा साहवने वड़ी निर्दयताका परिचय दिया, तथापि उस समय ऐसा करना ही उचित था।

दूसरे वर्ष रणजीतसिंह अपने सेनापति मोहकमचन्दके साथ एक वड़ी भारी फौज लेकर पटियाला आये और राजा साहवसिंह (पटियाला-वाले) तथा उनकी स्त्री (प्रसिद्ध रानी आसकुँअर)के वीचके झगड़ेकी निवृत्तिको। पूर्वोक्त रानी साहवाने महाराजा रणजीतसिंहको वहुत सा धन वतौर घूसके दिया था, इसलिये

महाराजाने उसके साथ वहुत दवकर कार्य्य किया। जब रणजीतसिंह वहांसे लौटे, तो उन्होंने फिरोजपुरकी वहुतसी रियासतें, जैसे नारायणगढ़, डोनीमोरएडा इत्यादिको अपने अधिकारमें करके, अपने सरदारोंके बीच बांट दिया।

सतलजके इस पारके सरदारोंको अब अच्छी तरह ज्ञात होगया, कि अपने झगड़ोंमें रणजीतसिंहको बुलाना कोई बुद्धिमत्ताका कार्य्य नहीं है। इसका यह कारण था, कि रणजीतसिंह स्वयं उनके इलाकोंको लेनेके लिये प्रस्तुत रहते थे। इसी समय, मार्च सन् १८०८ ई० में राजा-झींद, राजा-कैथलका भाई लालसिंह, और राजा साहबसिंह पटियाला वाले दिल्लीमें अङ्गरेज-रेजिडेण्टके कमाण्डर 'मिष्टर सिटिन' की सेवामें उपस्थित होकर प्रार्थी हुए, कि वे उनको अपनी संरक्षतामें लेलें। पर अङ्गरेजोंको, महाराजा रणजीतसिंहके राज्य बढ़ानेकी प्रणालीको रोकनेकी युक्ति न सूझती थी! क्योंकि उन्हें यह ज्ञात था, कि वे समस्त सिक्ख-राजाओंको अपने साम्राज्यके अन्तर्गत लाया चाहते हैं। अङ्गरेज-सर्कार रणजीतसिंहके साथ मैत्रीके सम्बन्धोंको एकाएक तोड़नेसे हिचकती थी, क्योंकि ऐसा करनेसे सम्भव था, कि रणजीतसिंह फ्रान्स वालोसे मैत्री करलेते।

इसी समय फ्रान्सके प्रसिद्ध सम्राट् "नेपोलियन वोनापार्ट"*

---

* "नेपोलियन वोनापार्ट" की सचित्र बड़ी जीवनी हमारे यहां मिलती है, इसमें नेपोलियनकी समस्त लड़ाइयोंका हाल बड़ी खबीसे लिखा गया है, सुन्दर सुन्दर ११ चित्र भी हैं। दाम २।) रुपया।

ने एशियामें एक बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित करनेका विचार किया था, पर सन् १८०८ ई० तक उसके सारे विचारों पर पानी फिर गया। किन्तु इतना होने पर भी अङ्गरेजोंको उसकी ओरसे बड़ा भारी खटका लगा रहता था। निदान अङ्गरेजोंका एक दूत 'सी० टी० मेटकाफ' महाराजा रणजीतसिंहसे नयी सन्धि करनेके निमित्त लाहौरकी ओर प्रस्थानित हुआ।

इस समय महाराजा बहादुरकी दशा सन्तोषजनक न थी। उनको उत्तरकी ओरसे अफगानों, पञ्जाबमें नये विजय किये हुए सरदारों, तथा जो सरदार अधीन न थे, उनकी शत्रुताका प्रत्येक समय खटका लगा रहता था। वे अङ्गरेजोंके बल तथा कौशलको भलीभांति जानते थे, किन्तु पूर्वोक्त कारणोंसे उनकी इस दशासे लाभ न उठा सकते थे। तिसपर भी यह विचार वे सदैव अपनी दृष्टिके आगे रखते थे, कि अपने साम्राज्यके समस्त खालसा-सरदारों और जागीरदारोंको मिलालें, क्योंकि सतलज-के दक्षिणके गत युद्धोंसे यह स्पष्ट हो गया था, कि फुलकियानके राजा और मालवाके सरदार आपसकी फूटके कारण इतने बलहीन हो गये हैं, कि वे उनका सामना नहीं कर सकते।

जब रणजीतसिंहने अङ्गरेजी दूतके आनेका समाचार पाया, तो वे बहुत घबराये। किन्तु उन्होंने निश्चय कर लिया, कि सन्धि होनेके पूर्व अपनी अवस्था दृढ़ करलें और इसी अभिप्राय-से उन्होंने सतलजके इस पारकी रियासतों पर आक्रमण करनेके लिये 'कसूर' में एक बड़ी फौज तय्यारकर ली। मेटकाफ

साहब पटियालाके राजासे भेंट करते हुए ११ सेप्टेम्बर सन् १८०८ ई० को 'कसूर' पहुँचे और उन्होंने अङ्गरेज-सर्कारकी इच्छानुसार महाराजा रणजीतसिंहसे प्रार्थनाकी, कि यदि 'नेपोलियन बोनापार्ट' भारत पर आक्रमण करे, तो वे अङ्गरेज-सर्कारकी सहायता कर उसको पीछे हटावें। महाराजा रणजीतसिंहने यह बात स्वीकार करते हुए कहा, कि इस सन्धि-के बदलेमें मैं भी अङ्गरेज-सर्कारसे यही इच्छा रखता हूं, कि वह मुझे सारी सिक्ख-जातिका प्रधान स्वीकार करले। मेटकाफ साहब इस बातका निपटारा, बिना अपनी गवर्नमेण्टकी अनुमति-के नहीं कर सकते थे, इसलिये वे चुप रह गये।

इसके बाद महाराजने नदी पारकर, फरीदकोट पर अपना अधिकार जमा लिया और फिर मलेरकोटलाके नव्वाबसे बहुतसा कर मांगा। मेटकाफ साहब रणजीतसिंहके साथ ही थे। पर जब महाराजने अम्बाले पर, जो इन रियासतोंके ठीक सामने था और अङ्गरेजोंके अधिकारमें आया चाहता था, आक्रमण करने-का विचार किया, तो वे फतहाबादकी ओर चले गये।

इसी बीचमें नेपोलियनके भारत पर आक्रमण करनेका खटका मिट गया और अङ्गरेजोंने रणजीतसिंहके साथ इस अवास्तविक भयके आधार पर सन्धि करना व्यर्थ समझा। अतएव अङ्गरेजी राजदूत मेटकाफ साहबने महाराजा बहादुरको सूचना दी, कि सतलजके दक्षिणीय प्रदेशों पर आपका स्वत्व [illegible] गवर्नमेण्ट स्वीकार न करेगी। महाराष्ट्र-शासनका उत्त-

राधिकारी बृटिशसिंह भारतमें है और जब मरहठोंके साथ हमारा युद्ध हो रहा था, तब आपहीने अपने और हमारी सर्कार-के राज्यकी सीमा सतलज नदी मानी थी। तभीसे हमारी सर्कारने सतलजके इस पारके देशोंका कर क्षमाकर उन्हें अपने अधीन कर लिया है। आपने अङ्गरेजी दूतके साथ जिसतरहका व्यवहार किया है, वह जातीय व्यवहारकी नीति-रीतिके सर्व्वथा प्रतिकूल है। जब परस्परमें पत्र-व्यवहार द्वारा बातचीत हो ही रही थी, तब आपका सतलजके इस पारके देशोंपर हाथ फैलाना उचित नहीं था। आपको उचित है, कि इस पत्र-व्यवहारके आरम्भसे जो इलाके आपने लिये हैं, उनको लौटा दें और सतलजके दक्षिणसे अपनी फौज हटालें।

इसके माननेमें महाराजा बहादुरने बहुत दिनों तक आगा-पीछा किया, यहां तक, कि—अङ्गरेजोंसे लड़नेके लिये अपनी फौज एकत्र करने लगे। अङ्गरेज-सर्कार भी बेखबर न थी, उसने भी एक बड़ी फौज अम्बालेकी छावनीमें भेज दी। पर अन्तमें महाराजाने फकीर अजीजुद्दीन इत्यादिकी रायसे इन शर्तोंको मान लिया और अप्रेल सन् १८०६ ई० से अङ्गरेज़ी सर्कार और महाराजा बहादुरमें परस्पर मैत्रीकी सन्धि हो गयी। इस सन्धि-को महाराजा रणजीतसिंहने ३० वर्ष तक ज्योंकात्यों निबाहा और दोनों सर्कारें मित्र भावसे अगल बगल राज्य करती रहीं।

———

महाराजा रणजीतसिंह तथा अंगरेजोंमें मित्रताकी वृद्धि।

मैत्री द्योतक सन्धि-पत्रके लिख जानेके उपरान्त अङ्गरेजों और महाराजा रणजीतसिंहके मध्य मैत्रीके सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गये। सन् १८२७ ई० में गवर्नर 'लार्ड एमहर्सन साहब' शिमलेमें आकर ठहरे। महाराजा बहादुरने लाट साहबकी सेवामें, इङ्गलैण्डके सम्राटके निमित्त एक अत्यन्त सुन्दर काश्मीरी शालका खेमा भेजा। इसके उत्तरमें लाट साहबने अपने अफसरोंके द्वारा पञ्जाब-केशरीके निकट भेंटकी अनेक उत्तमोत्तम सामग्रियां भेजीं। सन् १८२८ ई०में 'लार्ड एमहर्सन'ने भारतसे इङ्गलैण्ड लौट कर, सम्राट्के दर्बारमें रणजीतसिंहकी भेंट उपस्थितकी। सम्राट्ने भी उचित समझा, कि हमारी ओरसे भी महाराजा वहादुरको उत्तमोत्तम वस्तुएं भेंटकी जावें। अतएव गाड़ीके घोड़ोंकी एक सुन्दर जोड़ी, चार घोड़ियां और एक सांड़ घोड़ा, इङ्गलैण्डके गवर्नर जेनरलके द्वारा उनकी सेवामें भेजा गया। इन वस्तुओंको लेकर 'लेफ्टिनेण्ट गवर्नर साहब' सिन्धकी राहसे महाराजा वहादुरके दर्बारमें पहुंचे। महाराजाने उनकी वड़ी खातिर की। इसी बीचमें "लार्ड विलियम वेण्टिङ्क" भारतके गवर्नर जेनरल नियत हो चुके थे। उनको एलचियोंकी खातिरदारीसे प्रकट हो

गया, कि महाराजा साहब हमलोगोंसे अच्छा वर्ताव करते हैं। अतएव उन्होंने 'कप्तान वेडसाहव'से, जो महाराजाके दर्वारमें उनकी सम्मतिसे गये हुए थे, कहला भेजा, कि महाराजासे हमारी मुलाकातका जिक्र करो। महाराजाने भारतके गवर्नरसे भेंट करनेका वचन दिया। इस मुलाकातका प्रवन्ध सतलजके दोनों ओर बड़ी धूमधाम और ठाटबाटसे "रूपड़" नामक स्थानमें किया गया।

महाराजाकी फौज सतलजके उत्तरकी ओर और अङ्गरेजी फौज दक्षिणकी ओर थी। बड़ा ही आनन्दका समय उपस्थित हुआ। पहले महाराजा रणजीतसिंह गवर्नर जेनरल बहादुरसे, सतलजके दक्षिण ओर भेंट करने गये, फिर गवर्नर जेनरल साहबने महाराजा साहबके कैम्पमें जाकर बदलेकी मुलाकात की। यह धूमधाम एक सप्ताह तक बराबर जारी रही। महाराजा रणजीतसिंह अङ्गरेजी फौजकी कवायद और विशेष कर जङ्गीबैण्ड बाजेसे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अङ्गरेज़-गवर्नमेण्टकी ओरसे महाराजा बहादुरको कुछ बहुमूल्य रत्न, वर्म्माका एक सुन्दर हाथी और दो अत्यन्त उत्तम अश्व (घोड़े) भेंटमें दिये गये। इसके अतिरिक्त अश्वारोही (घोड़चढ़े) तोपखानेकी दो 'नौ पाउण्डर' तोपें मय घोड़े और साज-सामानके साथ दीं और एक लटकने वाले पुलका नमूना भेंट किया गया। रणजीतसिंहने प्रसन्नता पूर्वक यह भेंट स्वीकार-की और अङ्गरेज-गवर्नमेण्टको बहुतसे उत्तमोत्तम अश्व भेंट-

स्वरूप प्रदान किये। निदान यह अत्यन्त ही भड़कीली मुलाकात १ नवेम्बर सन् १८३१ ई० को समाप्त हुई और दोनों ओरकी फौजें अपने अपने राज्योंमें लौट गयीं।

महाराजा रणजीतसिंहका दर्बार।

महाराजा बहादुरकी सफलताका मुख्य कारण यह था, कि उन्होंने अपने दर्बारमें सुयोग्य सरदारों तथा बुद्धिमान् अफसरों का एक जबर्दस्त दल एकत्र कर लिया था और वे प्रत्येक सरदार तथा अफसरके विषयमें भली प्रकार जाँच कर लिया करते थे, कि वह उनके राजकीय कामोंमें कहांतक सहायता दे सकता है। वे इन सरदारोंके गुप्त चालचलनकी तनिक भी चिन्ता न करते थे। इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि महाराजा बहादुर अत्यन्त स्वार्थी मनुष्य थे, पर जो मनुष्य दर्बारमें उत्तम परामर्श वा युद्धक्षेत्रमें वीरताका परिचय देता था, वह उनसे उत्तमोत्तम पारितोषिक भी प्राप्त करता था।

जो मनुष्य राजकीय भेद खोल देता वा अन्य प्रकारसे राज्यका अशुभचिन्तक जँचता था, वह महाराजाकी दृष्टिमें तुच्छ हो जाता था। रणजीतसिंहने अपने सरदारों और अफसरोंको बड़ी बड़ी जागीरें दे रक्खी थीं। यद्यपि रणजीतसिंहके सरदार

और अफसर लोग धर्म्मके कारण आपसमें प्रायः वैर-प्रीति रखते थे, पर महाराजासाहब इन विषयोंसे वञ्चित थे। वे अपनी प्रजा-मात्रको, चाहे वह किसी धर्म्म या सम्प्रदायकी हो, समान भावसे देखते थे। उनके उन सरदारोंने, जिन्होंने निष्पक्ष भावसे राज्यकी सेवाकी, उनके हाथसे इतना धन और वैभव प्राप्त किया, कि वे मालामाल हो गये। जैसे, सरदार हरिसिंह, जमा-दार खुशहालसिंह, राजा साहबदयाल, राजा रलाराम * दीवान अयोध्याप्रसाद और पण्डित शंकरनाथ तथा अन्य बड़े बड़े अफसर लोग जातिके ब्राह्मण थे, पर ये लोग किसी धर्म्म और जातिसे विद्वेष न रखते थे।

---

* राजा साहबदयाल और राजा रलाराम जातिके सारस्वत ब्राह्मण थे। इन लोगोंके वंशधर इस समय भी काशी तथा पंजाबमें वर्तमान हैं और राजा रलारामका प्रसिद्ध घाट अब तक काशीमें भागीरथीके तट पर शोभायमान है।

रणजीतसिंहकी आकृति ।

वैरन ह्यूगलने रणजीतसिंहका ऐसा उत्तम चित्र उतारा है, कि उसको देखनेसे यही जान पड़ता है, कि महाराजा साहब मानो हमलोगोंके आगे खड़े हैं। वे मोटे और साधारण रूप वाले थे। उनकी बायीं आंख बन्द थी। दाहिनी आंख सतेज और चारों ओर घूमा करती थी। रंग भूरा था। मुँह पर शीतलाके चिन्ह बने हुए थे। नाक छोटी, सीधी और कुछ मोटी थी। दाढ़ीके बाल सफेद और काले थे, शीश बड़ा और सुडौल था और वे सरलता पूर्वक हिल न सकते थे। उनकी गर्दन मोटी और दृढ़ थी। भुजाएं और जांघे पतली थीं। उनके छोटे छोटे सुन्दर हाथ, यदि किसीका हाथ पकड़लेते थे, तो घण्टोंतक उसी तरह खड़े बातें करते रहते थे और प्रायः उसकी उँगलियां दबाया करते थे, जिससे उनके दिलकी घबराहट प्रकट होती थी। वे कुर्सी पर पल्थीमारकर बैठते थे। जब वे घोड़े पर सवार होते थे, तब उनके मुँहपर एक आश्चर्य्यजनक तेज झलकने लगता था। महाराजाकी वृद्धावस्थामें उनके एक ओरके अङ्गमें लकवा मार गया था, तिसपर भी वे भलीभांति घोड़ेको वशमें रखते थे। वे दृढ़, फुर्तीले, वीर, सहनशील और दिन दिन भर घोड़ेकी पीठ पर बैठने वाले एक पुरुष-रत्न थे!

महाराजा साहबका स्वभाव।

महाराजा साहब मृगया (शिकार) के बड़े प्रेमी थे। घोड़ोंको इतना प्यार करते थे, मानो उनपर आशिक थे। स्वयं अपने निमित्त एक बड़ा घुड़साल रखते थे, जिसमें भारत, अरब और ईरान इत्यादि देशोंके मूल्यवान घोड़े भरे रहते थे। आपको तलवारसे लड़नेका खूब अभ्यास था। नेजाबाजी और तलवार चलानेमें अद्वितीय थे। कपड़ा सादा पहनते थे। जाफरानी रंगका वस्त्र प्रायः धारण करते थे। मुख्य मुख्य अवसरोंको छोड़ कर और कभी रत्नादि वा आभूषण नहीं पहिनते थे। यद्यपि वृद्धावस्थामें रोगग्रस्त रहते थे, पर सारा दर्बार उनके रोबसे थर थर काँपता था। फक़ीर अजीज़ुद्दीन जब शिमलेमें "लार्ड विलियम बेण्टिङ्ग"से मिलने आये, तो एक अङ्गरेज अफसरने उनसे पूछा, कि—"महाराजा बहादुर किस आंखके काने हैं?" इस पर आपने जवाब दिया, कि "महाराजाके रोबसे, जनाब! आज तक मैं सिर उठा कर उनके चेहरेकी ओर देख नहीं सका, जो इस बातका फैसला करूं, कि वे काने हैं अथवा दोनों आंख वाले!"

परिशिष्ट ।

महाराजा रणजीतसिंह बहादुर यद्यपि बड़े स्वार्थी थे, किन्तु उनके जैसे लोगोंके लिये जो गुण आवश्यक होते हैं, वे उनमें कूट कूट कर भरे थे। वे वीरोंकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे, परन्तु दुष्टजनोंके लिये काल थे। वे राजनीतिमें चतुर थे। उनकी राजनैतिक चालें बाज बाज मौकोंपर ऐसी अच्छी पड़ती थीं, कि बड़े बड़े राजनैतिक पुरुष दाँतों उँगली काटते थे। राजा साहब धार्म्मिक भी पूरे थे। इतिहासोंमें उनकी दानशीलताका तो कहीं उल्लेख नहीं हुआ, पर ऐसे भी लोग अबतक काशी तथा पञ्जाबमें वर्त्तमान हैं, जो महाराजा बहादुरका समस्त वृत्तान्त आंखों देख या बता सकते हैं और उन्हीं वृद्ध महापुरुषोंका कथन है, कि हिन्दू अनाथ विधवाओंकी सहायताके लिये उन्होंने गुप्त रूपसे कुछ ऐसी स्त्रियां नियत करदीथीं, जो उनके घरघर जाकर महाराजा की तरफसे उन्हें द्रव्यकी सहायता पहुंचाया करती थीं। पर हाय! मौतने उन्हें भी न छोड़ा और हिन्दुओंका उज्वल और उत्तप्त 'तारा' सिक्ख-शिरोमणि "पञ्जाब-केशरी" सदाके लिये अस्त हो गया !!!

कहते हैं, महाराजा बहादुरके उत्तराधिकारी योग्य न हुए। यद्यपि रणजीतसिंहका बड़ा पुत्र खड्गसिंह बड़ावीर था, परन्तु पिताकी भांति उसमें प्रतापपूर्ण प्रतिभाका अभाव था । उसका

पुत्र नौनिहालसिंह ऐय्याश और बदचलन निकला। ये दोनों थो
ही दिनोंमें मारे गये!

युवराज शेरसिंह, जो महाराजा बहादुरका दूसरा पु
और अत्यन्त दुष्ट था, अपने पुत्र सहित सिन्धानवालि
सरदारोंके हाथसे मारा गया! और दलीपसिंह, जो महाराजाव
मझली रानीके उदरसे उत्पन्न था, सिक्खोंकी हारके बा
अङ्गरेजोंकी शरणमें आगया और भारत-गवर्नमेण्टकी इच्छानुस
विलायत भेज दिया गया!

तात्पर्य्य यह, कि सिक्खोंका प्रभाव जिस प्रकार देखते देख
पञ्जाब भरमें फैल गया था, उसी प्रकार बहुत शीघ्र नष्ट होगया
महाराजा रणजीतसिंह एक प्रतापी पुरुष थे। उन्होंने स्वयं अप
बुद्धि तथा कौशलसे अनन्त मान-मर्य्यादा और प्रतिष्ठा प्राप्त क
थी। उनकी आंखें बन्द होते ही वह सब धूलमें मिल गयी

आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारतके समय, जो फूटव
पौधा भारतवर्षमें लगाया गया था, धीरे धीरे उसकी उन्नति हम
भारतके सपूत वीर अपने रुधिरसे सींच सींच कर करते रहे
महाराजा पृथ्वीराज और जयचन्दने भी इस पौधेको खूब पु
किया और सचपूछिये, तो उसी समय आपसकी फूट तथा वै
नस्यके कारण भारतका पतन हुआ और भारत हमारे हाथ
निकल कर विदेशी वीरोंके हाथमें चला गया!

उन्नीसवीं शताब्दिमें महाराजा रणजीतसिंहने भारतवर्ष
एक कोनेमें सिर उठाया था, किन्तु हा! उनके मरतेही

फूटने उनके सम्बन्धियोंके हृदयमें वैमनस्यका विषैला अङ्कुर जमा दिया! अङ्गरेजोंसे युद्ध प्रारम्भ होने पर, उनकी छोटी रानी 'जिन्दा' अङ्गरेजोंसे मिल गयी। सिक्ख-सिपाहियोंको रसद और गोली-बारूद आदि देना बन्दकर दिया गया। पर तब भी सिक्ख-वीर भूख-प्यासका कुछ भी खयाल न कर खूब लड़े और विदेशी वीरोंके दांत खट्टे कर दिये! पर इससे हो क्या सकता था? जब राज-रानीकी ही ऐसी इच्छा थी, तब फिर उसे कौन रोक सकता था? घरकी फूट बड़ी बुरी होती है! जब इसी घरके शत्रु विभीषणके कारण महाबली, त्रैलोक्य-विजयी रावणका नाश होगया, तो ये किस गिनतीमें थे। अन्तमें सिक्ख-सरदार पराजित हो गये। पञ्जावके स्वतन्त्र-राज्यका पतन हुआ और पञ्जाववासियोंके पैरोंमें सदाके लिये पराधीनताकी बेड़ी पड़ गई !!!